६२१८

ये कहानियां

इस संग्रह में संकलित कुछ कहानियों की भी कहानियां हैं। कुछेक कहानियां जब पत्रिकाओं में छपीं तो छोटी-बड़ी मुश्किलें सामने आईं, और तब मुझे पता चला कि कोई भी सत्ता महज कहानियों से नहीं घबराती, वह कथ्य से घबराती है। कहानी का कथ्य ही उसका सत्य होता है। मेरे मित्र कथाकार ओमप्रकाश श्रीवास्तव ने एक जगह लिखा है कि 'यदि किसी-का दिमाग खराब करना हो तो सच बात कह दो।" और यही हुआ जब मैंने 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी लिखी।

इस संग्रह की कहानियां उस समय की हैं जब मैं इलाहाबाद छोड़कर दिल्ली आया था और दिल्ली आते ही एक रचनात्मक शून्य में फंस गया था, क्योंकि तब तक की लिखी कहानियों की भाषा, शिल्प और फार्म आदि मेरे काम नहीं आ रहे थे। सच्चाइयां इतनी उलझी हुई लग रही थीं कि उनका छोर समझ नहीं आ रहा था, ऐसे में विडम्बनाओं पर ही दृष्टि टिकती है। अब मुझे लगता है कि अपने समय और परिवेश को समझने में प्राथमिक दृष्टि व्यंग्य की ही हो सकती है। इस संग्रह की कहानियां मेरे लिए (शिल्प के रूप में) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनके सहारे ही मैंने पहली बार महानगर की उलझी हुई जिन्दगी के छोर पकड़े थे। जिन सच्चाइयों के सामने मैं खड़ा था, उनके प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ था। मुझे मालूम है कि इनमें से कुछ कहानियां कमजोर हैं, कहानियों के रूप में भी वे समर्थ नहीं हैं, पर इन्हीं कहानियों में परिवर्तन की एक प्रक्रिया भी है, जो मेरे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

दिल्ली आकर मेरा अन्तर्द्वन्द्व और आक्रोश और बढ़ गया था, मुझे साफ लग रहा था कि जिस व्यवस्था और समाज के बीच राजनीतिज्ञों की

८२१८

ये कहानियां

इस संग्रह में संकलित कुछ कहानियों की भी कहानियां है। कुछेक कहानियां जब पत्रिकाओं में छपी तो छोटी-बड़ी मुश्किलें सामने आईं, और तब मुझे पता चला कि कोई भी सत्ता महज कहानियों से नहीं घबराती, वह कथ्य से घबराती है। कहानी का कथ्य ही उसका सत्य होता है। मेरे मित्र कथाकार ओमप्रकाश श्रीवास्तव ने एक जगह लिखा है कि "यदि किसी-का दिमाग खराब करना हो तो सच बात कह दो।" और यही हुआ जब मैंने 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी लिखी।

इस संग्रह की कहानियां उस समय की हैं जब मैं इलाहाबाद छोड़कर दिल्ली आया था और दिल्ली आते ही एक रचनात्मक शून्य में फंस गया था, क्योंकि तब तक की लिखी कहानियों की भाषा, गति और फार्म आदि मेरे काम नहीं आ रहे थे। सच्चाइयां इतनी उलझी हुई लग रही थीं कि उनका छोर समझ नहीं आ रहा था, ऐसे में विडम्बनाओं पर ही दृष्टि टिकती है। अब मुझे लगता है कि अपने समय और परिवेश को समझने में प्राथमिक दृष्टि व्यंग्य की ही हो सकती है। इस संग्रह की कहानियां मेरे लिए (लेखक के रूप में) अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनके सहारे ही मैंने पहली बार महानगर की उलझी हुई जिन्दगी के छोर सुलझाए थे। जिन सच्चाइयों के सामने मैं खड़ा था, उनके प्रति दृष्टिकोण तय हुआ था। मुझे मालूम है कि इसमें संकलित कुछ कहानियां बचकानी हैं, कहानियों के रूप में भी वे समर्थ नहीं हैं, पर इन्हीं कहानियों में परिवर्तन की एक प्रक्रिया भी है, जो मेरे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

दिल्ली आकर मेरा असंतोष और आक्रोश और बढ़ गया था, मुझे लग रहा था कि जिस आस्था और ममता से मैं 'राजा निरबंसिया' की

क्रम

जार्ज पंचम की नाक
स्मारक
नाच
शरीफ आदमी
आत्मा अमर है
ब्रांच लाइन का सफर
अपने देश के लोग
नया किसान
भरेपूरे-अधूरे
अपने अजनबी देश में
जिन्दा मुर्दे

दुनिया में रह रहा था, वह व्यर्थ हो गई थी। राजनीति सचमुच क्या होती है, भ्रष्ट राजतंत्र और नौकरशाही सत्ता द्वारा लगाए गए अप्रत्यक्ष प्रतिबंध और उनमें घुटते-संघर्ष करते व्यक्ति की क्या हालत है—यह सब दिल्ली में ही पहली बार बहुत गहराई से दिखाई दिया। यह भी लगा कि इस तंत्र पर कहीं से भी कोई प्रहार नहीं किया जा सकता।

इसी घुटन से गुज़र रहा था कि मैंने 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी लिखी। कहानी के रचना-काल में मैं टेलीविज़न में सरकारी नौकर था। इस कहानी के छपते ही बवंडर खड़ा हो गया; फाइलें दौड़ने लगीं और पुलिस इन्क्वायरी शुरू हो गई। अंतत: मुझे लड़ते-झगड़ते नौकरी छोड़नी पड़ी। पर इस सरकारी कहानी का अंत तब हुआ जब मेरे नौकरी छोड़ने के डेढ़ बरस बाद मेरी जगह नियुक्त किए गए व्यक्ति से यह पूछा गया कि 'जार्ज पंचम की नाक' कहानी उसने क्यों लिखी ?

इसी तरह जब 'ब्रांच लाइन का सफर' कहानी छपकर मेरे कस्बे में पहुंची तो चाण्डाल साधुओं का एक गिरोह मेरी अक्ल ठीक करने के लिए तैयार हो गया। कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि ये घटनाएं कोई बड़ी बात नहीं हैं और न ये कहानियों को महिमा-मण्डित करती हैं, पर इतना ज़रूर है कि इन कहानियों ने मुझे लेखक की संलग्नता' का एक पाठ ज़रूर पढ़ाया है···यानी इन्होंने मुझे एक सक्रिय दृष्टि भी दी है और बेहतर कहानियों की पीठिका भी तैयार की है। इसीलिए मैं इन कहानियों का शुक्रगुज़ार हूं।

इस संग्रह का नाम 'जार्ज पंचम की नाक' था, पर अतिरिक्त दायित्व-बोध के मारे एक व्यक्ति के कारण इसका नाम 'ज़िन्दा मुर्दे' हो गया है, जिसका दायित्व न प्रकाशक का है, न मेरा। बहरहाल···

—कमलेश्वर

६ जनवरी, ७०
बम्बई

ज़िन्दा मुर्दे

जार्ज पंचम की नाक

यह बात उस समय की है जब इग्लैंड की रानी ऐलिजाबेथ द्वितीय मय अपने पति के हिन्दुस्तान पधारने वाली थी। अखबारो में उनके चर्चे हो रहे थे। रोज लन्दन के अखबारों से खबरें आ रही थी कि शाही दौरे के लिए कैसी-कैसी तैयारिया हो रही है······रानी ऐलिजाबेथ का दर्जी परेशान था कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और नेपाल के दौरे पर रानी कब क्या पहनेंगी? उनका सेक्रेटरी और शायद जासूस भी उनके पहले ही इस महाद्वीप का तूफानी दौरा करनेवाला था··· आखिर कोई मजाक तो था नही।······जमाना चूकि नया था, फौज-फाटे के साथ निकलने के दिन बीत चुके थे इसलिए फोटोग्राफरो की फौज तैयार हो रही थी···

इग्लैंड के अखबारो की कतरनें हिन्दुस्तानी अखबारो मे दूसरे दिन चिपकी नजर आती थी······कि रानी ने एक ऐसा हल्के नीले रग का सूट बनवाया है, जिसका रेशमी कपडा हिन्दुस्तान से मगाया गया है···कि करीब ४०० पौंड खर्चा उस सूट पर आया है।

रानी ऐलिजाबेथ की जन्मपत्री भी छपी। प्रिन्स फिलिप के कारनामे छपे, और तो और उनके नौकरो, बावर्चियो, खानसामों, अंगरक्षको की

जानं

यह बात उस समय की
मय अपने पति के हिन्दुस्तान
हो रहे थे। रोज़ लन्दन के अ
के लिए कैसी-कैसी तैयारियां
परेशान था कि हिन्दुस्तान, द
क्या पहनेंगी ? उनका सेक्रेट
इस महाद्वीप का तूफानी दौरा
या नहीं।……ज़माना चूंकि
बीत चुके थे इसलिए फोटोग्र
इंग्लैंड के अखबारों की
चिपकी नज़र आती थीं……
बनवाया है, जिसका रेशमी
करीब ४०० पौंड खर्चा उस
रानी ऐलिजाबेथ की
थे, और तो और उनके

दी जाए ! और जैसाकि हर राजनीतिक आन्दोलन में होता है, कुछ पक्ष में थे कुछ विपक्ष में और ज्यादातर लोग खामोश थे। खामोश रहनेवालों की ताकत दोनों तरफ थी......

यह आन्दोलन चल रहा था। जार्ज पंचम की नाक के लिए हथियारबंद पहरेदार तैनात कर दिए गए थे......क्या मजाल कि कोई उनकी नाक तक पहुंच जाए ! हिन्दुस्तान में जगह-जगह ऐसी नाकें खड़ी थीं और जिन तक लोगों के हाथ पहुंच गए उन्हें शानो शौकत के साथ उतारकर अजायबघरों में पहुंचा दिया गया। शाही लाटों की नाकों के लिए गुरिल्ला युद्ध होता रहा......

उसी जमाने में यह हादसा हुआ—इण्डिया गेट के सामने वाली जार्ज पंचम की लाट की नाक एकाएक गायब हो गई ! हथियारबंद पहरेदार अपनी जगह तैनात रहे। गश्त लगाते रहे......और लाट की नाक चली गई।

रानी आए और नाक न हो ! ......एकाएक यह परेशानी बढ़ी। बड़ी सरगर्मी शुरू हुई। देश के खैरख्वाहों की एक मीटिंग बुलाई गई और मसला पेश किया गया कि क्या किया जाए ?......वहां सभी सहमत थे कि अगर यह नाक नहीं है, तो हमारी भी नाक नहीं रह जाएगी......

उच्चस्तर पर मशवरे हुए। दिमाग खरोंचे गए और यह तय किया गया कि हर हालत में इस नाक का होना बहुत जरूरी है। यह तय होते ही एक मूर्तिकार को हुक्म दिया गया कि वह फौरन दिल्ली में हाजिर हो।

मूर्तिकार यों तो कलाकार था, पर जरा पैसे से लाचार था। आते ही उसने हुक्कामों के चेहरे देखे......अजीब परेशानी थी उन चेहरों पर; कुछ लटके हुए थे, कुछ उदास थे और कुछ बदहवास थे। उनकी हालत देखकर लाचार कलाकार की आंखों में आंसू आ गए......तभी एक

लानत बरस रही थी, उन्होंने सिर लटकाकर खबर दी—"हिन्दुस्तान का चप्पा-चप्पा खोज डाला, पर इस किस्म का पत्थर कहीं नहीं मिला। यह पत्थर विदेशी है।"

सभापति ने तैश में आकर कहा—"लानत है आपकी अक्ल पर! विदेशों की सारी चीजें हम अपना चुके हैं······दिल-दिमाग, तौर-तरीके और रहन-सहन······जब हिन्दुस्तान में बाल डान्स तक मिल जाता है तो पत्थर क्यों नहीं मिल सकता!"

मूर्तिकार चुप खड़ा था। सहसा उसकी आंखों में चमक आ गई। उसने कहा—"एक बात मैं कहना चाहूंगा, लेकिन इस शर्त पर कि यह बात अखबारवालों तक न पहुंचे···"

सभापति की आंखों में भी चमक आई। चपरासी को हुकुम हुआ और कमरे के सब दरवाज़े बन्द कर दिए गए। तब मूर्तिकार ने कहा—"देश में अपने नेताओं की मूर्तियां भी हैं······अगर इजाज़त हो······अगर आप लोग ठीक समझें, तो मेरा मतलब है, तो······जिसकी नाक इस लाट पर ठीक बैठे, उसे उतार लाया जाए······"

सबने सबकी तरफ देखा। सबकी आंखों में एक क्षण की बदहवासी के बाद खुशी तैरने लगी। सभापति ने धीमे-से कहा—"लेकिन बड़ी होशियारी से!"

और मूर्तिकार फिर देश-दौरे पर निकल पड़ा। जार्ज पंचम की खोई हुई नाक का नाप उसके पास था। दिल्ली से वह बम्बई पहुंचा······दादा भाई नौरोजी, गोखले, तिलक, शिवाजी, कावस जी जहांगीर—सबकी नाकें उसने टटोलीं, नापीं और गुजरात की ओर भागा—गांधीजी, सरदार पटेल, विट्ठलभाई पटेल, महादेव देसाई की मूर्तियों को परखा और बंगाल की ओर चला—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ, सुभाषचन्द्र बोस, राजा राममोहन राय आदि को भी देखा, नाप-जोख की और

आवाज़ सुनाई दी—"मूर्तिकार ! जार्ज पंचम की नाक लगनी है !"

मूर्तिकार ने सुना और जवाब दिया—"नाक लग जाएगी। पर मुझे यह मालूम होना चाहिए कि यह लाट कब और कहां बनी थी ? इस लाट के लिए पत्थर कहां से लाया गया था ?"

सब हुक्कामों ने एक-दूसरे की तरफ ताका······एक की नज़र ने दूसरे से कहा कि यह बताना ज़िम्मेदारी तुम्हारी है ! खैर मसला हल हुआ। एक क्लर्क को फोन किया गया और इस बात की पूरी छानबीन करने का काम सिपुर्द कर दिया गया !······पुरातत्त्व विभाग की फाइलों के पेट चीरे गए, पर कुछ भी पता नहीं चला। क्लर्क ने लौटकर कमेटी के सामने कांपते हुए बयान किया—"सर ! मेरी ख़ता माफ हो, फाइलें सब कुछ हज़म कर चुकी हैं !"

हुक्कामों के चेहरों पर उदासी के बादल छा गए। एक खास कमेटी बनाई गई और उसके ज़िम्मे यह काम दे दिया गया कि जैसे भी हो यह काम होना है और इस नाक का दारोमदार आपपर है। आखिर मूर्तिकार को फिर बुलाया गया······उसने मसला हल कर दिया। वह बोला—"पत्थर की किस्म का ठीक पता नहीं चलता, तो परेशान मत होइए··· मैं हिन्दुस्तान के हर पहाड़ पर जाऊंगा और ऐसा ही पत्थर खोजकर लाऊंगा !" कमेटी के सदस्यों की जान में जान आई। सभापति ने चलते-चलते गर्व से कहा—"ऐसी क्या चीज़ है जो अपने हिन्दुस्तान में मिलती नहीं। हर चीज इस देश के गर्भ में छिपी है······ज़रूरत खोज करने की है······खोज करने के लिए मेहनत करनी होगी, इस मेहनत का फल हमें मिलेगा······अपने वाला ज़माना खुशहाल होगा।"

वह छोटा-सा भाषण फौरन अखबारों में छप गया।

मूर्तिकार हिन्दुस्तान के पहाड़ी प्रदेशों और पत्थरों की खानों के दौरे निकल पड़े।······कुछ दिन बाद वह हताश लौटे, उनके चेहरे पर

करोड़ में से कोई एक जिन्दा नाक काटकर लगा दी जाए ....."

बात के साथ ही सन्नाटा छा गया। कुछ मिनटों की खामोशी के बाद सभापति ने सबकी तरफ देखा। सबको परेशान देखकर मूर्तिकार कुछ अचकचाया और धीरे-से बोला—"आप लोग क्यों घबराते हैं। यह काम मेरे ऊपर छोड़ दीजिए......नाक चुनना मेरा काम है......आपकी सिर्फ इजाज़त चाहिए!"

कानाफूसी हुई और मूर्तिकार को इजाज़त दे दी गई।

अखबारों में सिर्फ इतना छपा कि नाक का मसला हल हो गया है और राजपथ पर इण्डिया गेट के पास वाली जार्ज पंचम की लाट के नाक लग रही है।

नाक लगने से पहले फिर हथियारबंद पहरेदारों की तैनाती हुई। मूर्ति के आस-पास का तालाब सुखाकर साफ किया गया। उसकी खाब निकाली गई और ताज़ा पानी डाला गया, ताकि जो जिन्दा नाक लगाई जाने वाली थी वह सूखने न पाए। इस बात की खबर औरों को नहीं थी। यह सब तैयारियां भीतर-भीतर चल रही थी। रानी के आने का दिन नज़दीक आता जा रहा था। मूर्तिकार खुद अपने बताए हल से परेशान था। जिन्दा नाक लाने के लिए उसने कमेटीवालों से कुछ और मदद मांगी। वह उसे दी गई। लेकिन इस हिदायत के साथ कि एक खास दिन हर हालत में नाक लग जाएगी।

और वह दिन आया।

जार्ज पंचम के नाक लग गई।

सब अखबारों ने खबरें छापीं कि जार्ज पंचम के जिन्दा नाक लगाई गई है......यानी ऐसी नाक जो कतई पत्थर की नहीं लगती।

लेकिन उस दिन के अखबारों में एक बात गौर करने की थी। उस दिन देश में कहीं भी किसी उद्घाटन की खबर नहीं थी। किसीने कोई

बिहार की तरफ चला। बिहार होता हुआ उत्तर प्रदेश की ओर आया… चन्द्रशेखर आज़ाद, बिस्मिल, मोतीलाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय की लाटों के पास गया……घबराहट में मद्रास भी पहुंचा, सत्यमूर्ति को भी देखा, और मैसूर केरल आदि सभी प्रदेशों का दौरा करता हुआ पंजाब पहुंचा—लाला लाजपतराय और भगतसिंह की लाटों से भी सामना हुआ। आखिर दिल्ली पहुंचा और अपनी मुश्किल बयान की—"पूरे हिन्दुस्तान की मूर्तियों की परिक्रमा कर आया। सबकी नाकों का नाप लिया—पर जार्ज पंचम की इस नाक से सब बड़ी निकलीं!……

सुनकर सब हताश हो गए और झुंझलाने लगे। मूर्तिकार ने ढाढ़स बंधाते हुए आगे कहा "सुना था कि बिहार सेक्रेटेरियट के सामने सन् बयालीस में शहीद होनेवाले तीन बच्चों की मूर्तियां स्थापित हैं…… शायद बच्चों की नाक ही फिट बैठ जाए, यह सोचकर वहां भी पहुंचा… पर……उन तीनों की नाकें भी इससे कहीं बड़ी बैठती हैं। अब बताइए, मैं क्या करूं?"

……राजधानी में सब तैयारियां थीं। जार्ज पंचम की लाट को मल-मलकर नहलाया गया था। रोगन लगाया गया था। सब कुछ था, सिर्फ नाक नहीं थी!

बात फिर बड़े हुक्कामों तक पहुंची। बड़ी खलबली मची—अगर जार्ज पंचम के नाक न लग पाई, तो फिर रानी का स्वागत करने का मतलब? यह तो अपनी नाक कटानेवाली बात हुई।

लेकिन मूर्तिकार पैसे से लाचार था……यानी हार माननेवाला कलाकार नहीं था। एक हैरतअंगेज खयाल उसके दिमाग में कौंधा और उसने पहली शर्त दुहराई। जिस कमरे में कमेटी बैठी हुई थी, उसके दरवाज़े फिर बंद हुए और मूर्तिकार ने अपनी नई योजना पेश की—"चूंकि नाक लगना एकदम जरूरी है, इसलिए मेरी राय है कि चालीस

स्मारक

"और तब तुम मेरी लाश को कब्र से निकालकर तमगे पिन्हाओगे। मुझे वहां भी आराम से सोने नहीं दोगे। तुमने मुझे ज़िंदगी-भर परेशान किया। मैं अपने बच्चों के पेट की खातिर एक-एक टुकड़े के लिए मारा-मारा फिरता रहा। जब मैंने सच्ची बात कही,तब तुमने मुझे जेल के सीकचों के भीतर ढकेल दिया। मुझपर मुकदमे चलाए और मेरा जीना मुश्किल कर दिया। और मेरी मौत की खबर पाकर तुम तकरीरें करोगे ....घड़ियाल के आंसू बहाओगे। और मेरी यादगारें खड़ी करने की बातें करोगे......लेकिन मैं तुम्हें जानता हूं ...तुम मेरे चैन से सोए हुए दिल में बेइज्ज़ती का एक खंजर और मारोगे.. ...."

ये उस महान लेखक की किताब की भूमिका के अन्तिम वाक्य थे, जिन्हें सलीम साहब ने अभी-अभी डबडबायी हुई आंखों से पढ़कर सुनाया था। सब लोगों के दिल भर आए थे, पलकें झुकी और गर्दन लटकी हुई थी। उसके ये वाक्य कमरे की बंधी हुई फ़िज़ा में ठहरे हुए धुएं की तरह लटक रहे थे और लोगों के अभी तक चमकते हुए चेहरे ऐसे धूमिल पड़ गए, जैसे किसीने रोशनी का रुख बदल दिया हो। कई मिनटों तक

फीता नहीं काटा था। कोई सार्वजनिक सभा नहीं हुई थी। कहीं भी किसीका अभिनंदन नहीं हुआ था, कोई मानपत्र भेंट करने की नौबत नहीं आई थी। किसी हवाई अड्डे या स्टेशन पर स्वागत-समारोह नहीं हुआ था। किसीका ताज़ा चित्र नहीं छपा था।

सब अखबार खाली थे।

पता नहीं ऐसा क्यों हुआ था ?

नाक तो सिर्फ एक चाहिए थी और वह भी बुत के लिए।

का दुर्भाग्य है कि उनके जैसे लाडले सपूत इस तरह भूखो मरें······उनकी बीवी के अन्तिम संस्कार के लिए जब हमने चन्दे से रुपया जमा करना चाहा, तो उन्हे यह बर्दाश्त न हुआ। उसी दिन उन्होने अपने एक उपन्यास की पाडुलिपि का कापीराइट बेचा और पत्नी का अंतिम सस्कार पूर्ण किया······मुझे वह दिन याद है····· आज भी वे सब दृश्य मेरी आखो के सामने नाच रहे हैं······मै देख रहा हू कि पत्नी की लाश घर मे पडी है और वे 'कापीराइट एग्रीमेंट' पर हस्ताक्षर कर रहे हैं। ऐसा था उनका गर्व। मैं उनके गर्व को नमन करता हू और अपने युग के महानतम साहित्यकार को श्रद्धांजलि अर्पित करता हू······" कहते-कहते चन्द्रभानजी का गला भर आया था और वे आखो पर रूमाल रखकर अपनी जगह बैठ गए।

जिस प्रकाशक की कोठी पर यह शोकसभा हो रही थी, वे स्वय बहुत दबे-दबे, निहायत निरीह सूरत बनाए चोबदार की तरह बैठे थे। अध्यक्ष की नजर उनपर पडी, तो धीरे-से बोले, "विहारी बाबू इधर निकल आइये······" और अपनी बगल मे सोफे पर उनके लिए जगह खाली कर ली। विहारी बाबू बडे सकोच से कदम रखते हुए इस तरह आए जैसे पास वाले कमरे मे सोई पडी उस महान आत्मा की नींद मे खलल न पड जाए। उनके हाथ-पैर ढीले थे और वे रह-रहकर अपने सुनहरी कमानी वाले चश्मे को भौंहो मे चिपकाकर सामने दीवार पर लगी उस फोटो को ताक लेते थे, जिसमे उस महान लेखक के साथ उनका और उनके परिवार का चित्र था।

इस अन्तराल के बाद उस लेखक की मौत फिर भारी पडने लगी। जो स्वच्छंदता अभी लोगो के व्यवहार मे आ गई थी, वह गम्भीरता मे बदल गई और अध्यक्ष महोदय के इशारे मे एक खद्दरधारी सज्जन उठकर खडे हुए, "माननीय अध्यक्ष महोदय और साथियो, मैं इसे अपना

सन्नाटा छाया रहा।

अगर नौकर ने ऐन इसी वक्त पान-सिगरेट की ट्रे न हाज़िर कर दी होती, तो सभी ऊबते हुए, बुत की तरह बैठे रहते। लोगों ने बड़ी शांति से मातमी ढंग पर पान खा लिए या सिगरेटें सुलगा लीं और तब अध्यक्ष महोदय ने कहा, "अब मैं चन्द्रभानजी से प्रार्थना करूंगा कि वे दो शब्द कहें। चन्द्रभानजी का यह सौभाग्य रहा है कि वे लगातार तीन बरस तक उनके साथ रहे हैं और आपने बहुत नज़दीक से उन्हें जाना-पहचाना है·· चन्द्रभानजी···"

चन्द्रभानजी ने शुरू किया, "सबसे पहले मैं उस महान आत्मा, उस महान साहित्यिक को अपना श्रद्धापूर्ण प्रणाम अर्पित करता हूं!" इतना कहकर वे एकाएक चुप हो गए, उनके चेहरे पर दर्द की लकीरें परछाईं की तरह कांप रही थीं, एक क्षण जैसे चन्द्रभानजी ने उस दिवंगत आत्मा का स्मरण किया हो, फिर बोलना शुरू किया, "यह मेरा सौभाग्य था कि मैं उनके साथ एक लम्बी अवधि तक रहा और उन्हें हर तरह से देखने का मुझे मौका मिला। वे बड़े ही निश्छल और सरल व्यक्ति थे। उन्होंने मुसीबतों में कभी हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने अपने दिन निपट निर्धनता में बिताए और आखिरी समय तक वे अपनी मजबूरियों और परिस्थितियों से लड़ते रहे। जिस समय उनकी पत्नी का देहांत हुआ था, मैं वहीं था। फाकेमस्ती की यह हालत थी कि उस समय उनके पास कफन तक के लिए कपड़ा न था उधार देनेवाले उनके नाम से कतराते थे। उनकी जिन्दगी में ऐसे दिन तक आए जब घर में चूल्हा तक नहीं जला। मैं उन्हें अपने घर खाने के लिए बुला-बुलाकर लाता था। खाना खाकर वे चुपचाप बैठे रहते थे। और एक भी शब्द ·· उठ जाया करते थे। मैंने उनका थोड़ा-बहुत कर्ज़ चुकाया तब दुकान से उन्हें राशन मिलना शुरू हुआ। यह हमारी भाषा

थे……वे भविष्य-द्रष्टा थे। यह हमारे युग का दुर्भाग्य है कि हम अभी तक उन जैसा एक भी कवि पैदा नही कर सके। क्योंकि साहित्य सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् का मूलमन्त्र हमें देता है। हमारे ऋषियों ने कहा है—जो शिव है, जो सुन्दर है वही सत्य है। साहित्य से चूंकि यह भावना उठ गई है इसीलिए हम पिछड गए हैं। हम नही जानते कि रहस्यवाद क्या है? इसका कारण सिर्फ यह कि हमारा लेखक साधना से घबराता है। और जब तक लेखक अपने इस दायित्व को नही समझेगा, समाज आगे नही बढ़ेगा। आज विदेशो मे हमारे देश की जो इज्जत है उसका मुख्य कारण है, हमारी शांतिप्रिय विदेश नीति। हमने देश-विदेश मे अपनी आवाज पहुंचायी है। सम्मान प्राप्त किया है……सत्य के आधार पर। यही सत्य साहित्य का आधार है। वह मानवतावाद हो, छायावाद हो, रहस्यवाद हो, इन्किलाब हो, जिन्दाबाद हो—सबमे सत्य समाया है। आज के लेखको और कवियो से मेरा नम्र निवेदन है कि वे इसी सत्य को पहले प्राप्त करें और देश के निर्माण मे अपना हक अदा करें। बस, मुझे इतना ही कहना है।" और वे उसी जोश में अपनी जगह पर बैठ गए।

शोकसभा में आए हुए सभी लोगों के चेहरे फक थे। अध्यक्ष भी थोड़ा सकते में आ गए थे। हवा एकदम बदल गई थी। अपने सूखे हुए होंठों को तर करते हुए अध्यक्ष ने कहा, "अभी हमारे नगर के तपस्वी नेता श्री जिनेन्द्रजी ने आपके सामने अपने विचार रखे, हमें चाहिए कि हम उनका मनन करें। अपने महानतम लेखक के प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी…… 'अब मैं श्री विहारी बाबू से करबद्ध प्रार्थना करूंगा कि वे संक्षेप मे कुछ कहें।" कहकर अध्यक्ष ने अपनी घड़ी पर

ने अपने कुरते की आस्तीनें हाथ तक सरका लीं और

अहोभाग्य मानता हूं कि मैं आज इस मीटिंग में उपस्थित हो सका। हम अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लेखक से अभी बहुत दूर नहीं गए हैं। वे आने वाले ज़माने में भी ज़िन्दा रहेंगे और एक लाइट-हाउस की तरह हर भटकते हुए जहाज़ को रास्ता दिखाएंगे······मुझे वे दिन याद आते हैं जब यहां वे मेरे साथ कालिज में पढ़ते थे······" खद्दरधारी सज्जन ने इतने आत्मविश्वाश से यह बात कही थी कि एक सज्जन प्रतिवाद कर बैठे, "उन्होंने शिक्षा नागपुर में पाई थी, यहां तो वे चार साल पहले आए थे।"

अध्यक्ष ने आंख के इशारे से प्रतिवादी को मना करना चाहा······ खद्दरधारी सज्जन का मुंह तमतमा आया था, अपने मुंह के कोनों में बह आए पान को पोंछते हुए वे ज़रा सख्ती से बोले, "यह निहायत अफसोस की बात है कि आज का पढ़ा लिखा और साहित्यकार कहा जानेवाला आदमी एक बात के असली अर्थ को न समझ पाए!" और उन्होंने बड़ी सफाई से अपनी बात संभाली, "गोर्की ने 'माई यूनिवर्सिटीज़' लिखा है, तो इसका मतलब यह नहीं कि वे विश्वविद्यालयों में पढ़े थे। जीवन की पाठशालाएं सबसे बड़े कालिज हैं, जिनसे लेखक कवि और नाटककार अपने अनुभव प्राप्त करता है। वह समाज का अग्रदूत है······।" खद्दरधारी सज्जन जोश में आ गए थे, सुपाड़ी का कोई टुकड़ा गले में अटककर खराश पैदा कर रहा था, मेज़ पर रखा गिलास उठाकर उन्होंने पानी पिया और बोलने लगे, "साहित्य एक साधना है, वह एक व्रत है और साहित्यकार एक महान साधक। साहित्य समाज का दर्पण होता है। जैसा समाज होगा, वैसा ही साहित्य होगा।" उनके हाथ हवा में दर्पण का नक्शा बनाते हुए उंगलियों से कोई बड़ा-सा बोल्ट खोलकर समाज का रूप सामने लाना चाहते थे, "हमारी परम्परा वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास और तुलसी की है। वे अपने युग के महान स्रष्टा

थे·····वे भविष्य-द्रष्टा थे। यह हमारे युग का दुर्भाग्य है कि हम अभी तक उन जैसा एक भी कवि पैदा नहीं कर सके। क्योंकि साहित्य सत्य, शिवम्, सुन्दरम् का मूलमन्त्र हमें देता है। हमारे ऋषियों ने कहा है—जो शिव है, जो सुन्दर है वही सत्य है। साहित्य से चूंकि यह भावना उठ गई है इसीलिए हम पिछड़ गए हैं। हम नहीं जानते कि रहस्यवाद क्या है? इसका कारण सिर्फ यह कि हमारा लेखक साधना से घबराता है। और जब तक लेखक अपने इस दायित्व को नहीं समझेगा, समाज आगे नहीं बढ़ेगा। आज विदेशों में हमारे देश की जो इज़्ज़त है उसका मुख्य कारण है, हमारी शांतिप्रिय विदेश नीति। हमने देश-विदेश में अपनी आवाज पहुंचायी है। सम्मान प्राप्त किया है······सत्य के आधार पर। यही सत्य साहित्य का आधार है। वह मानवतावाद हो, छायावाद हो, रहस्यवाद हो, इन्क्लाब हो, जिन्दाबाद हो—सबमें सत्य समाया है। आज के लेखकों और कवियों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे इसी सत्य को पहले प्राप्त करें और देश के निर्माण में अपना हक अदा करें। बस, मुझे इतना ही कहना है।" और वे उसी जोश में अपनी जगह पर बैठ गए।

शोकसभा में आए हुए सभी लोगों के चेहरे फक थे। अध्यक्ष भी थोड़ा सकते में आ गए थे। हवा एकदम बदल गई थी। अपने सूखे हुए होठों को तर करते हुए अध्यक्ष ने कहा, "अभी हमारे नगर के तपस्वी नेता श्री जिनेन्द्रजी ने आपके सामने अपने विचार रखे, हमें चाहिए कि हम उनका मनन करें। अपने महानतम लेखक के प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी······अब मैं श्री बिहारी बाबू से करबद्ध प्रार्थना करूंगा कि वे संक्षेप में कुछ कहें।" कहकर अध्यक्ष ने अपनी घड़ी पर निगाह डाली।

बिहारी बाबू ने अपने कुरते की आस्तीनें हाथ तक सरका लीं और

अहोभाग्य मानता हूं कि मैं आज इस मीटिंग में उपस्थित हो सका। हम अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लेखक से अभी बहुत दूर नहीं गए हैं। वे आने वाले ज़माने में भी ज़िन्दा रहेंगे और एक लाइट-हाउस की तरह हर भटकते हुए ज़हाज़ को रास्ता दिखाएंगे······मुझे वे दिन याद आते हैं जब यहां वे मेरे साथ कालिज में पढ़ते थे······" खद्दरधारी सज्जन ने इतने आत्मविश्वाश से यह बात कही थी कि एक सज्जन प्रतिवाद कर बैठे, "उन्होंने शिक्षा नागपुर में पाई थी, यहां तो वे चार साल पहले आए थे।"

अध्यक्ष ने आंख के इशारे से प्रतिवादी को मना करना चाहा······ खद्दरधारी सज्जन का मुंह तमतमा आया था, अपने मुंह के कोनों में वह आए पान को पोंछते हुए वे जरा सख्ती से बोले, "यह निहायत अफसोस की बात है कि आज का पढ़ा लिखा और साहित्यकार कहा जानेवाला आदमी एक बात के असली अर्थ को न समझ पाए!" और उन्होंने बड़ी सफाई से अपनी बात संभाली, "गोर्की ने 'माई यूनिवर्सिटीज़' लिखा है, तो इसका मतलब यह नहीं कि वे विश्वविद्यालयों में पढ़े थे। जीवन की पाठशालाएं सबसे बड़े कालिज हैं, जिनसे लेखक कवि और नाटककार अपने अनुभव प्राप्त करता है। वह समाज का अग्रदूत है······।" खद्दरधारी सज्जन जोश में आ गए थे, सुपाड़ी का कोई टुकड़ा गले में अटककर खराश पैदा कर रहा था, मेज़ पर रखा गिलास उठाकर उन्होंने पानी पिया और बोलने लगे, "साहित्य एक साधना है, वह एक व्रत है और साहित्यकार एक महान साधक। साहित्य समाज का दर्पण होता है। जैसा समाज होगा, वैसा ही साहित्य होगा।" उनके हाथ हवा में दर्पण का नक्शा बनाते हुए उंगलियों से कोई बड़ा-सा बोल्ट खोलकर समाज का रूप सामने लाना चाहते थे, "हमारी परम्परा बाल्मीकि, भवभूति, कालिदास और तुलसी की है। वे अपने युग के महान स्रष्टा

८२२८

बोलने लगे, "मित्रो ! मैं भी आपसे दो-चार शब्द कहना चाहता हूं। मैं आपका अधिक समय न लेकर अपनी बात संक्षेप में कहूंगा······आज से तीस साल पहले की बात है, जब मैंने लिखना शुरू किया था और तब से निरन्तर साहित्य की सेवा करता आ रहा हूं। मैंने अब तक सरस्वती की साधना करके लगभग पचहत्तर से ऊपर गद्य-कृतियों का प्रणयन किया है, खैर इसे छोड़िए······आज हम अपने साहित्य के सुप्रसिद्ध प्रगतिशील लेखक के निधन के उपलक्ष्य में यहां एकत्रित हुए हैं···वे मेरे साथी थे। हम लोगों ने लगभग एकसाथ लिखना शुरू किया था। मैंने कुछ पहले शुरू किया था। मुझे अच्छी तरह याद है, जब वे अपनी पहली कहानी लिखकर मेरे पास लाए थे। उस समय तक मैं साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश कर चुका था, मेरी रचनाएं प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आदरपूर्ण स्थान पाने लगी थी। मैंने उनकी प्रथम कहानी की बड़ी कटु आलोचना की थी। हम फिर भी अच्छे मित्रों की तरह मिलते रहे और एक-दूसरे को अपनी रचनाएं सुनाते रहे।

"सच पूछिए, तो वे मेरे बड़े निकटतम मित्रों में थे। आज जो आप मुझे इस रूप में देख रहे हैं, यह दर्जा मुझे योंही प्राप्त नहीं हुआ। मेरे पिताजी को कविता से शौक था और जब छोटी उम्र में मैंने पहली बार एक कविता लिखी, तो मेरे पिताजी ने मुझे बहुत बढ़ावा दिया और धीरे-धीरे वे मुझे अपने साथ छोटे-छोटे कवि-सम्मेलनों में ले जाने लगे। मेरे पाठकों के बीच यह झगड़ा है कि मैं मुख्यतः उपन्यासकार हूं, कवि हूं, कहानीकार हूं, या आलोचक। मित्रो, मैंने कविता से प्रारम्भ किया इसलिए मैं अपने को मुख्यतया कवि ही मानता हूं और उसीमें मेरे दिल की भावनाएं अपने पंख पसारती हैं। बहरहाल इसे छोड़िए······ आज हमारी भाषा एक ऐसे पद पर है कि हमें उसके सम्मान की रक्षा के लिए बड़े-बड़े काम करने हैं। वे अपना काम पूरा कर गए। यह एक

बड़े दु:खपूर्ण स्वर में वोले, "यह समय मेरे वोलने का नहीं है। साहित्य के दिग्गजों के सामने मुझे वोलते संकोच होता है। आज हम जिस महान आत्मा की शोकसभा के लिए यहां एकत्रित हुए हैं वे मेरे अपने थे। वे मेरे परिवार के अंग थे। आज मैं अकेला रह गया। यह हमारी भाषा के एक समर्थ महारथी का ही निधन नहीं, मेरी व्यक्तिगत क्षति है। आज से चार साल पहले वे मुझे एक साहित्य-सभा में मिले थे। तब वे वहुत कष्ट में थे। आपकी दया से मैं इस योग्य था कि उनकी कुछ सहायता कर सकूं। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे इस नगर में आकर इसे कृतार्थ करें। मैंने उनसे वहुत आग्रह किया कि वे मेरे घर को ही पवित्र करें, पर वे लिखने के लिए एकांत चाहते थे। मैंने अपना एक मकान इसलिए खाली करवा दिया। मैंने उनसे किराया भी नहीं लिया। और यह मेरा सौभाग्य था कि वे आजन्म मेरी सेवा स्वीकार करते रहे, अपना स्नेह मुझे देते रहे और मेरे परिवार के एक अंग वन गए······ मेरा दिल इतना भरा हुआ है कि इस अवसर पर कुछ भी कह सकना कठिन होता जा रहा है। मैंने उनकी समस्त पुस्तकों को एक जगह से प्रकाशित करने का वीड़ा उठाया है, जिससे हमारे साहित्य के इस श्रेष्ठ स्रष्टा की समस्त कृतियां पाठकों को सुविधापूर्वक सुलभ हो सकें। हमने जनसाधारण की दृष्टि में रखकर उनकी कृतियों का मूल्य वहुत कम रखने की कोशिश की है, ताकि उनका प्रचार घर-घर हो सके और हमारे इस मेधावी लेखक के विचार चारों ओर फैल सकें······।

"मेरी यही कामना है कि वे जो कुछ जीवनपर्यन्त सोचते रहे वह अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचे, जो कुछ उन्होंने लिखा वह हमारे साहित्य की अमर निधि है। मैं अपने मित्र, अपने अग्रज और सरस्वती के वरद् पुत्र को अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।"

उनके वैठते ही प्रसिद्ध कथाकार भुवनेशजी अपने-आप खड़े होकर

यहा साहित्यिक समस्याओ के समाधान के लिए नही वरन् एक शोक-सभा के लिए एकत्रित हुए हैं, अत इन बातो का निपटारा बाद मे होना रहेगा। आप कृपा करके बैठ जाइए।" उन खड़े हुए सज्जन के बैठने ही ध्यक्ष ने कहा, "आपके सामने बहुत-से लोग बोल चुके हैं और अब छ भी कहने को शेष नही है। यह अवसर भी ऐसा नही, इसलिए मैं क प्रस्ताव आपके सामने रखता हू और एक मिनट मौन की प्रार्थना रूंगा और उसके बाद एक बात और सामने रखूगा।"

एक मिनट-मौन के बाद दु खी साहित्यिकों का प्रस्ताव आया, उसकी वीकृति के बाद अध्यक्ष महोदय बोले, "हमारे यहा मृत को पूजने की रिपाटी है। पता नही, हम जीवित व्यक्तियो का सम्मान करना कब खेंगे। खैर यह समस्या आगे की है, इस समय मेरा प्रस्ताव है कि हम नके लिए स्मारक की स्थापना करें—यही अपने नगर मे, ताकि आने ली पीढियां जान सकें कि उन्होने अपने अन्तिम दिन इसी पुण्य नगरी बिताए थे। विदेशो मे बडी ही स्वस्थ परम्परा है, वे अपने साहित्यिको सम्मान करना जानते हैं। हम भी इस ओर कदम बढाए, तो बन्धुओ, रा प्रस्ताव है कि एक स्मारक ऐसा हो, जहा उनकी समस्त कृतिया, पर लिखी गई आलोचनाएं और उनकी पाडुलिपिया तथा उनका अन्य मान आदि सुरक्षित रूप से रखा जा सके।"

"मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हू।" चन्द्रभानजी ने कहा, मैं उनसे अन्तिम दिनो [illegible] था, तब उनके चेहरे पर बडी घोर [illegible]दाशा छाई थी और [illegible] से मुझसे पूछा था—'क्यों चन्द्र-[illegible]! मैंने क्या [illegible] जो मेरे मरने के बाद जीवित [illegible] मैंने [illegible] नही देखा था। मेरी आखे [illegible], आप हमारे साहित्य [illegible] मे हम लोग आपके

बड़ी दिलचस्प बात है कि साहित्यिक समस्याओं और बातों को लेकर हममें-उनमें बहुत झगड़े हुए। ऐसे अवसरों पर अधिकतर वे हार जाते थे और अगली बार के लिए तैयार होकर आते थे। जब वे मेरे साथ थे तब मैंने अपना प्रथम उपन्यास 'भीगा आँचल लहराए रे' लिखा था......।"
भुवनेशजी ने धीरे-से मुस्कराकर आगे कहा, "कविता मेरे ऊपर कितनी हावी थी, इसका आभास आपको इस शीर्षक से हो गया होगा...... इसके बाद मैं भावुकता और कल्पना की दुनिया से निकल आया। मैंने यथार्थ की ठोस धरती पर चरण रखे......यह मेरा नया मोड़ था, इस काल में मैंने 'पत्थर की दीवार' और 'बुलबुले' नामक दो उपन्यास लिखे। इन्हें आलोचकों ने खूब सराहा। इसके बाद मैंने सत्रह कहानी-संग्रह और दस कविता-संग्रह तथा तीन खण्डकाव्य लिखे...... यह सूची आप कहीं भी देख सकते हैं। अब मैं एक नयी किताब लिखने जा रहा हूं, जिसमें मेरे साहित्यिक साथियों के संस्मरण होंगे और मैं अपनी सच्ची श्रद्धांजलि उन्हें इसी रूप में प्रस्तुत करूंगा। अब मैं आपसे आज्ञा चाहता हूं......नमस्कार।"

और नमस्कार की नाटकीय मुद्रा में ही वे अपनी जगह बैठ गए। सामने बैठे हुए मूक श्रोताओं में एक साहब ढीली गद्दी की तरह बार-बार उचक रहे थे, खड़े होकर उन्होंने अध्यक्ष से एक मिनट का समय मांगा। आज्ञा मिलते ही उन्होंने कहा, "अभी हमारे कथाकार महोदय भुवनेशजी ने दिवंगत लेखक को प्रगतिशील के विशेषण से अभिहित किया, मैं इसका विरोध करता हूं। वे सच्चे मानवतावादी थे, मैंने उनके साहित्य की एक-एक पंक्ति पढ़ी है और मैं इस गम्भीर आक्षेप के लिए बहस करने को तैयार हूं। क्या अपनी स्थापना के सम्बन्ध में प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं?" और वे सज्जन ललकारने की मुद्रा में अपनी जगह पर खड़े रहे। अध्यक्ष ने घड़ी पर निगाह डालकर कहा, "भाइयो, हम लोग

हुआ था। बीच मे गुलदस्ते सजे थे।

"यह शोकसभा है या चाय-पार्टी !" एक ने कहा तो बिहारी बाबू कातर होकर बोले, "आप आज इस घर पर पधारे हैं······ऐसा अवसर कहां मिलता है, इसे स्वीकार कीजिए······एक प्याला ही सही।"

पर कुछ लोगों के पैर ठिठक रहे थे। तब तक खद्दरधारी जितेन्द्रजी ने कहा, "अब स्मारक कमेटी की ओर से सही।" एक ठहाका गूंजा और सब मुक्त होकर उधर बढ़ गए।

और तीन-चार दिन बाद उस स्मारक-निधि वाले मकान पर, जिसमें वह युग-निर्माता साहित्यकार मरा था, एक बोर्ड लगा हुआ था—'मकान किराये को खाली है,' जिसमे एक नही, चार लोहे की कीलें खजरों की तरह घुसी हुई थीं।

लिए अभी तक कुछ नहीं कर पाए, पर आने वाली सन्तति आपका मूल्य पहचानेगी और आपको वह सम्मान देगी जो आज तक किसीको नहीं मिला। यह आपका प्राप्य है, जो अभी तक आपको नहीं मिला।' सुनते-सुनते उनकी आंखें भर आई थीं। विहारी बाबू उस समय वहीं थे, और विहारी बाबू ने जिस समय उनसे कहा था –आपके स्मारक बनेंगे। नये लेखक वहां बैठ-बैठकर लिखना सीखेंगे। तो उनकी आंखों में आंसू ढरक पड़े थे, जैसे वे विश्वास न कर रहे हों। उन्हें अपनी महत्ता का कभी ज्ञान नहीं हुआ।

"उसी दिन विहारी बाबू ने लौटते वक्त एक बात सुझायी थी क्यों न इनका स्मारक हम लोग यहीं बनवाएं······आखिर हमारे नगर का अब उनपर पूरा अधिकार है। अपना यह मकान, जिसमें वे रह रहे हैं, मैं स्मारक निधि को दान दे दूंगा। विहारी बाबू के उस दिन के ये शब्द मुझे याद हैं। और अब वह समय आ गया है, यद्यपि यह बड़ी दुःखद घटना है, पर जो दुनिया में आया है वह जाएगा भी। मैं विहारी बाबू से अनुरोध करूंगा कि वे अपनी बात आज पूरी कर दें और हम लोग चन्दा जमा करके अन्य आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ करें।"

शोकसभा में सन्नाटा छाया हुआ था। आखिर धीरे-धीरे 'स्मारक-निधि' की बात आगे बढ़ी और लोगों ने एक कमेटी बनाई। सबने अपना-अपना चन्दा लिखवाया······किसीने सौ, किसीने दो सौ······जितना जिसके सामर्थ्य में था। एक मन्त्री निर्वाचित हुए और शोकसभा भंग हो गई।

लोग अब तक ऊब चुके थे। चलने के लिए उतावले थे कि विहारी बाबू ने अपनी सुनहरी कमानी वाला चश्मा भौंहों से चिपकाते हुए बड़ी विनम्रता से कहा, "आप लोग कुछ चाय-पान तो कर लें।"

वाहर बरामदे में मेजें लगी हुई थीं और उनपर भरपूर नाश्ता रखा

'मिस लिली की शादी तय हो चुकी थी··· ···।' वह कह रहा था कि एक ने बात काट दी, 'किसके साथ—चन्द्रकात के साथ ?'

'नहीं, एक और आदमी के साथ ! धीरज से सुनिए, क्योंकि यह कहानी एक निराश, पर आदर्शवादी प्रेमी की है। मिस लिली चन्द्रकांत से प्रेम करती थी, पर शादी दूसरे से कर रही थी, और चन्द्रकात ने यह स्वीकार कर लिया था

तो हुआ यह कि चन्द्रकात के यहा मिस लिली स्टैनो के रूप मे काम करने लगी थी और चन्द्रकात उसे देख-देखकर बहुत खुश होता था। यार-दोस्तों को खास तौर से दफ्तर मे इसीलिए बुलाता था कि वे उसकी किस्मत से रश्क करें। खैर इस बात को छोडिए मिस लिली की शादी-वादी से भी हमे कुछ लेना-देना नहीं, वह होती है या नही होती है, इससे भी हमारा कुछ सरोकार नहीं, बहरहाल कहानी इस तरह चलती है

यह बात बड़े दिनों की है। मिस लिली के ससुरालवाले बड़ा दिन मनाने के लिए उसके घर आए हुए थे। कॉटेज छोटा था और जिस शान-शौकत तथा स्थिति का दिखावा वह करना चाहती थी, वह उस फटेहाल घर में मुमकिन नहीं था। इसलिए उसने बगल में एक बड़ा घर खाली करवा लिया था। बड़े दिन के जशन का इन्तजाम वहीं हुआ था। उस घर की सफ़ाई धुलाई की गई थी। कमरो में सारी सजावट कर दी गई थी। मिस लिली के बुड्ढी और ससुरालवाले उस निहायत सजे हुए घर मे कुछ दिनो के लिए आबाद हो गए थे।

बड़ा दिन आने वाला था। चन्द्रकांत ने सारे इन्तजाम का जिम्मा ले लिया था। एक कमरे मे पीने-पिलाने और नाच का इन्तजाम था··· ···उसके लकड़ी के फर्श पर सेलखड़ी पोती गई थी। उसके बगलवाले कमरे में क्रिसमस ट्री बनाया गया था। क्रिसमस ट्री के लिए दान भिजवाई थी चन्द्रकांत ने। वह मिस लिली के मेहमानों की खातिरदारी में मशगूल

नाच

सभीको कहानी सुनने का इन्तज़ार था, क्योंकि कहानी पुरमज़ाक होगी, यह उम्मीद सभीको थी । तभी चाय का एक घूंट भरते हुए उसने शुरू किया, 'मान लीजिए कि उसका नाम है चन्द्रकांत और प्रेमिका का नाम है लिली !······तो भई, हुआ यह कि 'लव एट फर्स्ट साइट' वाला एक्सीडेंट हो गया । चन्द्रकांत ने अपना नया-नया कारबार चलाया था, ज़िन्दगी में पहली बार चार पैसे उसके हाथ आए थे । पैसे हाथ में आते ही सबसे पहले उसने एक स्टैनो रखने की बात तय की, क्योंकि इससे व्यापार में इज़्ज़त बढ़ती है । बड़े ठाट-बाट से उसने अखबारों में विज्ञापन दिया और तीसरे ही रोज़ से किसी न किसीके आने की राह देखने लगा ।'

'भई, असली कहानी शुरू करो !' एक ने इसरार किया ।

चाय का एक और घूंट लेते हुए वह आगे बोला, 'हां, तो आप इतना ज़रूर समझ गए होंगे कि यह कहानी एक स्टैनो के रख जाने से शुरू होती है । अच्छा तो अब ठीक नब्ज़ पर हाथ रखता हूं······एक-एक बात ज़रा संभालकर सुनिएगा ।'

आती ·····औरतें उम्र पर कभी नहीं आती ! यह तो आग है मेरे भाई, जो लगाए न लगे और बुझाए न बुझे !'

ग़ालिब के इस शेर से उसे बड़ी राहत मिली। अगर यह शेर न लिखा गया होता, तो शायद चन्द्रकांत ने कुछ और ही फ़ैसला किया होता। आखिर उसने टाई बांधी और जूते पहने तो कीलें बज उठीं। जूते उतारकर उसने कीलों को अच्छी तरह ठोका ताकि वे नाच के वक्त शोर न करें और रूमाल में सेंट की बूंदें टपकाकर वह चल दिया।

लिली के घर की ओर जाते हुए तमाम बातें उसके दिमाग में आ रही थीं। जब मिस लिली पहली बार नौकरी के लिए उसके आफिस में आई थी। वह पर्देवाले कपड़े का स्कर्ट पहने थी। वैनिटी बैग का रंग उतरा हुआ था और सैंडिल की ऊंची एड़ी तरबूज़ के डंठल की तरह भीतर घुसी हुई थी। पुरानी सैंडिल पर नेकटाई ज़रूर बंधी हुई थी। तब उसके होंठों पर न लिपस्टिक की लाली थी और न चेहरे पर रूज़ पाउडर का लेप। कैमरे के स्टैण्ड की तरह लम्बी-लम्बी अंगुलियां थीं और बैसाखी की तरह की टांगें। पहली नजर में तो चन्द्रकांत हताश हो गया था, पर मिस लिली की निगाहों में जो प्यार का सोता फूट रहा था उसे वह नज़रअंदाज़ नहीं कर पाया था·······

और तब उसने मन ही मन कहा था—'यह लड़की मेरी ज़िन्दगी में आकर रहेगी··· ' और उस रात रह-रहकर उसकी वे प्यार-भरी आंखें उसे कचोटती रही थीं।

दूसरे दिन से मिस लिली काम पर आने लगी थी। उसके बैठने का इन्तज़ाम उसने अपने कमरे में ही किया था। और पहले ही दिन चन्द्रकांत लिली की शोखी और चुस्ती का शिकार हो गया था। वह बड़ी फुर्ती से डिक्टेशन लेती और सही-सही टाइप करके सामने रख देती। अपनी थकी हुई अंगुलियों को आपस में फंसाकर खींचती और चन्द्रकांत

था। एक नशा-सा था उसपर—मुहब्बत में शहीद हो जाने का। मेहमानों के घर की सजावट और साज़ोसामान का ऐसा चौकस बंदोबस्त किया था चन्द्रकांत ने कि लिली ने भी दांतों तले अंगुली काट ली थी ······कमरों में क्रेपपेपर की इन्द्रधनुषी पट्टियां लटक रही थीं। जगह-जगह कन्दीलें और गुब्बारे लटक रहे थे। रंग-बिरंगे फूलदान मेंटिलपीस और एश ट्रे पीने की छोटी मेज़ों पर सजे हुए थे। किराये के फर्नीचर पर कुशन और साटन के मेज़पोश थे और एक अलमारी में बोतलें बन्द थीं। बहरहाल बड़ा दिन आया—उसी शाम डांस का प्रोग्राम भी था। लिली और सब लोग पहले से ही वहां मौजूद थे। चन्द्रकांत को शामिल होने के लिए वक्त से आना था।······इतना सब कुछ चन्द्रकांत ने कर तो दिया था, पर जब भी वह लिली के बिछुड़ने का ख्याल करता, तो उसका दिल बैठने लगता। पर यह सब तो वह खुद ही कर रहा था······क्योंकि उसने लिली से आदर्शवादी प्रेम की झोंक में खुद ही कहा था—'मुझे सिर्फ तुम्हारी खुशी चाहिए······और कुछ भी नहीं लिली ···।

शाम हो रही थी। चन्द्रकांत अपने घर में बैठा रह-रहकर उतावला हो उठता था······सब लोग वहां उसका इन्तज़ार कर रहे होंगे! दिल बहुत घबराया हुआ और परेशान-सा था। किसी करवट चैन नहीं आ रहा था। एक बार मन करता कि न जाए, पर दूसरे ही क्षण लिली को देखने और उसके साथ कुछ वक्त गुजारने की बेचैनी हावी होने लगती।

आखिर चन्द्रकांत ने लुंगी फेंककर पैंट चढ़ाई, कमीज़ पहनी और टाई बांधने के लिए जैसे ही वह आईने के सामने खड़ा हुआ, तो उमर के अहसास ने उसे ढीला कर दिया। उसके दिमाग में दोस्त की वह बात कौंधने लगी—'चन्द्रकांत, यह सब तमाशे उम्र के साथ फबते हैं, तुम किस मामले में फंस गए हो···।'

पर चन्द्रकांत ने कहा था, 'यार प्रेम के मामले में उम्र आड़े नहीं

चाय पीने की दावत दी थी। लिली मान गई थी, पर होटल में उसके साथ घुसते हुए चन्द्रकात को पसीना आ गया था। जैसे-तैसे उसने अपने को सभाला था और वापस लौटते वक्त उसने लिली से कहा था, 'लिली डियर, मेरे साथ साड़ी पहनकर आया करो!'

बात के पीछे छिपी भावना को लिली ने समझते हुए भी नासमझ बनने की कोशिश करते हुए कहा था—'क्यों?'

'अच्छी लगती है!' कहकर स्वय अपनी चतुराई पर चन्द्रकात को खुशी हुई थी। लिली ने धीरे-से कहा था—"हमारे पास साड़िया हैं ही नहीं!'

और दूसरे ही दिन चन्द्रकात ने उपहार-स्वरूप साड़ियों का एक बडल मिस लिली के घर भिजवा दिया था।

उसीके दूसरे रोज चन्द्रकात ने बड़े प्यार से उसे एक खत डिक्टेट करने के लिए बुलाया था। लिली साड़ी पहनकर आई थी और बड़ी शोखी से डिक्टेशन लेती जा रही थी। चन्द्रकात भी बीच-बीच में उसे देखता रह जाता और बोला हुआ वाक्य भूल-भूल जाता था। जैसे-तैसे खत खत्म हुआ और अन्त में चन्द्रकात ने खत पढ़कर सुनाने के लिए कहा था। लिली ने एक बार मुस्कराकर उसे देखा था और शार्टहैण्ड की कापी उसके सामने रखकर मुस्कराती हुई बाहर चली गई थी। चन्द्रकात ने देखा, कापी में खत नहीं, प्यार के शोले धधक रहे थे।

आई लव यू इन्टेन्सली! आई कान्ट लिव विथ-आउट यू! आई सी यू इन माई ड्रीम्स!' और न जाने कितनी सुलगती हुई इबारतें उन पन्नों पर थीं।

चन्द्रकात ने उसी वक्त और सारे काम छोड़कर एक लम्बा प्रेमपत्र लिली के नाम लिखा और उसके नशे में डूबा रहा था। उस दिन से वह रोज एक प्रेमपत्र लिली के पर्स में डाल देता और हर सुबह उसके

की ओर देखते हुए धीरे-से मुस्करा देती ।

कुछ ही दिनों में चन्द्रकांत महसूस करने लगा था कि उसका डिक्टेशन लेना इतना जरूरी नहीं था जितना कि उसका मुस्कराना। और जब भी लिली प्यार से मुस्कराती और अपनी थकी हुई अंगुलियों को चटखाती, तो नज़र दबाकर चन्द्रकांत चाय का आर्डर प्लेस कर देता खुद पीने से पहले लिली के सामने प्याला पेश करता ।

धीरे-धीरे मिस लिली पूरे आफिस की देखभाल करने लगी थी। उसने आफिस का हुलिया ही बदल दिया था । वह खुद जाकर चन्द्रकांत के कमरे के लिए आफिस के पैसे से कारपेट लाई थी, उसकी मेज़ उसने बदलवाई थी, एक नया टेबिल लैम्प उसके लिए लाई थी,जिसे उसने खुद मेज़ पर लगाया था। साथ ही वह गुलदान लाई थी और वेस्टपेपर बास्केट भी मंगवाकर रख दी थी······चन्द्रकांत के कमरे के लिए उसने पर्दों का रंग और डिज़ाइन पसंद किया था······और जब उसने वे कीमती पर्दे लाकर कमरे में लगवा दिए थे तो चन्द्रकांत का दिल झूम उठा था। आफिस का पैसा तो काफी लग गया था, पर जो रौनक आई थी उसकी कल्पना तक चन्द्रकांत ने नहीं की थी। धीरे-धीरे आफिस की सभी चीज़ों में तब्दीली आ गई थी । सभी चीज़ें चमकने लगी थीं और इसीके साथ-साथ लिली के होंठों पर लाली आ गई थी । पैरों में नई जूती आ गई थी, रेशमी स्कर्ट और कमर के लिए बेल्ट आ गई थी। हुलिया कुछ इस कदर बदला था कि खुद चन्द्रकांत को कुरता-पैजामा पहनकर आफिस आते शरम लगती थी । धीरे-धीरे चन्द्रकांत का हुलिया भी तब्दील हुआ था······

और फिर आफिस के बाद चन्द्रकांत ने लिली के साथ बाहर निकलना शुरू किया था। आखिर एक शाम चन्द्रकांत ने बड़ी हिम्मत की । पहली एकांत मुलाकात के लिए चन्द्रकांत ने लिली को एक होटल में

शहादत के उसी जोश में चन्द्रकांत इधर-उधर घूमती लिली को ताकता रहा और अपना गम गलत करता रहा।

आखिर जब नाच की थकान हावी होने लगी और लोग सहन में आने लगे तभी पादरी आ गए और सब लोग उस कमरे में पहुँचे जहाँ क्रिसमस ट्री था। बहुत-सी मोमबत्तियाँ उसके चारों ओर जल रही थीं।

क्रिसमस ट्री उपहारों से लदा हुआ था। पादरी ने एक खिलौना तोड़कर लिली के छोटे भाई के हाथों में थमा दिया। तालियाँ बजीं। बच्चों को उपहार दे चुकने के बाद बड़ों की बारी आई। चन्द्रकांत की नजर लटकते हुए एक नीले लिफाफे पर जमी थी। उसपर किसका नाम था, यह वह ठीक से नहीं देख पा रहा था, पर मन कहता था कि यह उसीके लिए है……आखिर आज उसे वह नीला लिफाफा मिल ही गया था जिसे वह रोज लिली के पर्स में खोजता था। आखिर पादरी ने वह नीला लिफाफा तोड़ा और नाम पढ़कर चन्द्रकांत के हाथों में थमा दिया। उसका दिल बुरी तरह धड़क उठा—एकाएक वह बहुत बेचैन हो गया। सब अपने-अपने उपहारों को देखने और तारीफ करने में मशगूल थे, तभी चन्द्रकांत सबकी नजर बचाकर बाहरवाले बरामदे में पहुँचा। जलती हुई बत्ती के नीचे खड़े होकर उसने एक बार हसरत-भरी निगाह से उस नीले लिफाफे को देखा, फिर उसे सूँघा, वह सेंट से महक रहा था। आँख बन्द करके उसने उस लिफाफे को एक बार चूमा, फिर आँखें खोलकर लिली की लिखावट में अपना नाम पढ़ा और धड़कते दिल से उसे खोल डाला।

यहाँ तक कहानी सुनाकर वे सज्जन चुप हो गए। एक क्षण रुककर उन्होंने कहानी सुननेवालों से सवाल किया, 'तो दोस्तो! बताइए, उस नीले लिफाफे में क्या था?'

झट से एक ने कहा, 'लिली का पहला प्रेमपत्र।'

उत्तर की प्रतीक्षा करता। खतों का जवाव उसे हर रोज़ मुस्कराहटों स मिलता रहा।

'लेकिन उस पार्टी में क्या हुआ, जिसके लिए चन्द्रकांत तैयार होकर चला था?' एक ने पूछा।

'ओफ! वड़ा दर्दनाक मंज़र था वह!' उसने आगे सुनाना शुरू किया, 'जव चन्द्रकांत वहां पहुंचा, तो मिस लिली अपने होने वाले पति के साथ लॉन पर टहल रही थी! उसे यूं टहलता देखकर चन्द्रकांत का दिल बैठ गया। पर राहत उसे उन्हीं वातों से मिलती थी जो मिस लिली ने उससे कभी कही थीं—शादी के वाद हमारे रिलेशन्स और भी अच्छे हो सकेंगे!—यह वाक्य ही उसे सहारा दे रहा था, पर मन में कहीं खलिश भी थी। आखिर भग्न हृदय लिए चन्द्रकांत वड़े दिन के नाच में शामिल हुआ। नाचना उसे आता नहीं था लिली ने उसका साथ देते हुए उसे ठीक से स्टैप्स रखना वताए, तो उस क्षण-भर की निकटता से उसका मन नाच उठा। पर दो क्षण वाद ही लिली सरक गई। आखिर चन्द्रकांत लिली की ममी के पास जाकर वातों में मशगूल हो गया। उसने धीरे-से पूछा, "क्रिसमस ट्री के लिए प्रेज़ेंट्स का वंडल वक्त से आ गया था?'

'प्रेज़ेंट्स आप खुद चुनकर लाए थे?' ममी ने पूछा।

'नहीं-नहीं, लिली ने परसों ही मुझे लिस्ट वनवा दी थी।' चन्द्रकांत ने कहा।

'ओह तव तो लिली खुद जाकर आपके लिए अपने मन का क्रिसमस प्रेज़ेंट लाई होगी!' लिली की ममी ने कहा।

'और वे वोतलें आ गई थीं?'

'ओह इट इज़ सो काइण्ड आफ़ यू! इट इज़ ऑल विकाज़ आफ़ यू!' लिली की ममी ने कहा तो चन्द्रकांत गद्‌गदायमान हो गया।

शरीफ आदमी

एक नौजवान सज्जन, रामानंद गाड़ी से उतरे और लिफ्ट में चढ़कर सीधे ऊपरवाली मंजिल के रिटायरिंग रूम में पहुंचे। कुली से सामान भीतर भिजवाकर खुद बाहर रुक गए। रात के सफर से पैंट और कोट मलगजे हो गए थे। कमीज की आस्तीनें और कालर के किनारे काले हो गए थे। रिटायरिंग रूम के चौकीदार की खोज पाते ही उन्होंने सवाल किया, 'तुम यहां के चौकीदार हो!' हां में उत्तर मिलते ही उन्होंने एक अठन्नी उसकी हथेली में रखी और बताया, 'मैं एकाध घंटे के लिए रुकूंगा जरा बारबर को बुला दो।'

बारबर से उन्होंने भीतर कमरे में बैठकर दाढ़ी बनवाई। जूतेवाले से पालिश करवाई और नहाने चले गए। नहा-धोकर उन्होंने बढ़िया गबैर्डीन का सूट निकालकर पहना। एक गहरी, नीली टाई बांधी जिसके किनारे सफेद थे, और जो यूनानी तलवार की तरह लग रही थी। चौकीदार को बताकर वे फिर लिफ्ट से नीचे उतरे और रूमाल से जूते की धूल को झाड़ते हुए रिफ्रेशमेंटरूम में नाश्ते के लिए घुस गए।

कमीज का कालर ठीक करते हुए उन्होंने बैरे से वह सब कुछ पूछा

'कुछ और सोचिए !' कहानी सुनानेवाले ने कहा ।

'लिली का फोटो !' दूसरे ने कहा ।

'और सोचिए !' कहानी सुनानेवाले ने ज़ोर दिया ।

'लिफाफा खाली था !' तीसरे ने कहा ।

हल्का-सा ठहाका लगा । तभी कहानी सुनानेवाले ने कहा, 'जी नहीं, उसमें जशन पार्टी के खर्चे का बिल था······और लिली की लिखावट में लिखा था 'प्लीज़ अटैण्ड टु इट—लिली !' और ऊंचे उठते हुए ठहाकों के बीच फिर किसीने और आगे नहीं सुना कि चन्द्रकांत पर क्या बीती ! वह नाच कहां जाकर खत्म हुआ !

'यह तो पार्लमेंट हाउस है। मुझे तो साउथ एवेन्यू उतरना है ···' रामानन्द ने सरदारजी की तरफ आँखें टेढ़ी करते हुए कहा।

'इद्र उतरना है। इद्र से ट्रैफिक के लिए मनाई है। जाएगा तो चालान होएगा!' सरदारजी ने रिक्शे की मरमराहट और तेज करते हुए वापस जाने की जल्दी दिखाई। रामानन्द को यह बात खल गई। बोले, 'हम नहीं जानते, हमको साउथ एवेन्यू उतरना है!'

'बाबू साहब एक मिन्ट का रास्ता है यहां से। हम लोग को जाने का हुकुम नहीं···जल्दी कीजिए···' सरदारजी ने खिजलाते हुए कहा।

उसकी सीट पर पैसे रखकर रामानन्द भुनभुनाते हुए उतरे कि सरदार ने बांह पकड़ी, 'ऐ साहब···पूरा पैसा दीजिए···यही रेट है यहां का!'

एकदम बौखलाते हुए रामानद बरस पड़े, 'बाहर का समझकर लूटना चाहता है! समझता है मैं गधा हूं···'

'मैं कुछ नहीं समझता, पूरा पैसा समझता हूं!' सरदार ने मोटर बंद करके कहा।

'इससे ज्यादा नहीं मिलेगा, लेना हो ले जाओ, नहीं फेंक जाओ!' आगे बढ़ने के लिए कदम उठाते हुए रामानन्द ने कहा, तो सरदार लपककर सामने जा पहुंचा, 'फेंककर, नहीं, पूरा पैसा लेकर जाऊंगा···'

कतराकर निकलते हुए उन्होंने बड़ी बेरुखाई से कहा, 'जो देता हो उससे वसूल कर लो ······' और आगे बढ़ने लगे।

'वसूल तो अभी कर लूंगा······' तमककर सरदार ने कहा।

अपना पोर्टफोलियो ज़मीन पर फेंक, टाई झटकारकर कोट की आस्तीनें चढ़ाते हुए रामानन्द एकदम बिफर उठे, 'तू मुझे पढ़ा-लिखा शरीफ आदमी समझता है! है···तेरी ऐसी की······'

झटके से बैग खुल गया था और उसमें रखे हुए डिग्रियों के सर्टीफिकेट और तमाम कागज बाहर निकल आए थे।

आत्मा अमर है

अंग्रेज़ों के जाने से पहले इस क्लब की बड़ी शान-शौकत थी। क्लबों की जात-पांत में यह क्लब ब्राह्मण माना जाता था। इसका ब्राह्मणत्व तो अभी भी बरकरार है, पर वह बात नहीं रह गई। खर्चा अब भी बहुत है और प्रवेशाधिकार भी आसान नहीं। इसमें वही सरकारी लोग प्रवेश पाते हैं जिनकी तनख्वाहें दो हज़ार के ऊपर हैं, सवारियां स्कूटर से हैं और बीवियां अपने-पराये के ऊपर हैं।

इस क्लब की कुलीनता का बड़ा ध्यान रखा जाता है—सरकारी अफसरों के अलावा डाक्टर, बैरिस्टर और पाये के पत्रकार ही इसमें जैसे-तैसे घुस पाते हैं······

जब से अंग्रेज़ गए, इसमें वह रौब-दाब नहीं रह गया; हां, चहल-पहल पहले से भी कुछ ज़्यादा ही है।

और खास तौर से कुछ रातें ऐसी हंगामे की गुज़री हैं जो इस क्लब के इतिहास में अमिट बन गई हैं। उनमें से भी एक रात बेहद हंगामे की गुज़री—वह रात हमेशा 'प्रवचनों वाली रात' के रूप में याद की जाएगी। प्रवचन रात के करीब साढ़ दस बजे हुए थे। डांस रोककर

हुए थे।

वह शाम ही बेहद रंगीन थी। उसी शाम ब्रिज में सत्रह सौ रुपये हारकर मिसेज वासवानी ने अकाउंट में नोट चढ़वाए थे और परमार की तलाश में घूमने लगी थीं। आखिर वह स्विमिंगपूल पर मिस चन्द्रा के साथ मिला था। परमार की आवभगत सारी मेजों पर बड़ी होती थी, क्योंकि कॉकटेल बनाने में उसको सब मान जाते थे—'सिर्फ तीन राउण्ड! तो सबसे पहले रम-ऑरेंज दो······फिर जिन ऐण्ड लाइम और बाद में व्हिस्की।'

मिसेज वासवानी ने उसे पकड़ा तो वह समझ गया। काउण्टर पर आते ही उसने आर्डर दिया और दोनों को लिए-लिए मेज पर बैठ गया। मिसेज वासवानी और मिस चन्द्रा को ब्रांडी और जिंजर दिया और अपने लिए फ्रेंच वरमूथ और ऑरेंज मंगाकर जम गया। सत्रह सौ की हार *का गम गलत करने के लिए आज उसे परमार की शरण लेनी पड़ी थी।* परमार की ख्याति बड़े ही दूसरे रूप में थी। उसे यहां की सभ्य भाषा में बड़ा ही खुरदरा, ओवर स्मार्ट और 'ही' समझा जाता था।

ब्रिज में हारती किसी भी महिला को वह कभी बनाकर बैठ जाता था और जिताकर उठ जाता था। अपने-अपने साहबों के आने से पहले तक सभी कुलीन महिलाएं उसके आस-पास घूमती थीं और उनके आ जाने के बाद दूर-दूर हो जाती थीं।

मिस्टर वासवानी आए तब शाम गहरी हो चुकी थी और परमार मिसेज वासवानी के एकाउंट में चार पैग पी चुका था। मिसेज वासवानी उससे कतराकर अलग चली गईं, मिस्टर वासवानी ने उन्हें देख लिया था। थके और भूखे होने के कारण वे अपनी मिसेज के साथ एक कोने-वाली मेज पर आकर बैठ गए।

फ्लोर तैयार था, बैंडवाले मैनेजर के कमरे में कुछ गपशप कर

रहे थे और रात धीरे-धीरे रंगीनी पर जा रही थी। टेनिस नेट उखड़ चुके थे और एक लड़का फ्लोर पर लगी खड़िया को साफ कर रहा था। मार्कर उधर बिलियर्ड रूम में झांक रहा था।

मिस्टर वासवानी बड़े आहिस्ता-आहिस्ता कुछ खा रहे थे और मिसेज़ अपनी हार की दास्तान सुनकर गमगीन-सी बैठी हुई थीं।

परमार मिस चन्द्रा को लिए हुए सामनेवाली मेज़ पर बैठा था और रह-रहकर मिसेज़ वासवानी को ताक रहा था। वासवानी ने एक बार देखा और धीरे से अपनी भावनाओं का इजहार किया—'स्वाइन।'

परमार बराबर देखे जा रहा था। चारों तरफ उन्मुक्त हंसी की खिलखिलाहट थी और देशी-विदेशी सिगरेटों-शराबों की महक छा रही थी।

बैंड शुरू हो गया था।

ओ···ओ···लव मी टेंडर···ओ···ओ···

बैरे ट्रेज़ लिए आदमी-औरतों के सैलाब के बीच तैर रहे थे और मेजों के नीचे हल्की थापें पड़ रही थीं। एक साहब बगल में बैठी महिला के कंधे पर ही थाप दे रहे थे और बेसाख्ता पाइप पी रहे थे। धुएं के नायलानी आंचल छत और फर्श के बीच में लहरा रहे थे।

भीड़ बढ़ती जा रही थी। बाहर पोर्च में रह-रहकर कारों के रुकने की आवाजें आ रही थीं और हंसते-खिलखिलाते जोड़े भीतर आ रहे थे। गिरोहों में इधर-उधर खड़े लोगों के बीच हर आता हुआ आदमी समा जाता था···

साड़ियों की सरसराहट और कास्मेटिक्स की गंध जैसे किचन से छूट-फूटकर आ रही थी। परमार बार-बार मिसेज़ वासवानी को घूरे जा रहा था और वासवानी की त्योरियां भीतर ही भीतर चढ़ती जा रही थीं। खाते-खाते वह कसमसा रहा था। एकाध बार उसने कनखियों

अपनी मिसेज़ की ओर देखा, पर वह बैंड की धुन में खोई हुई थी। इससे वासवानी को थोड़ी राहत मिली। कुछ क्षणों बाद उनकी परेशानी और भी बढ़ गई। परमार सीटी पर धुन बजा रहा था...ओ...ओ...लव मी टेंडर...और बड़े ही बेहूदे ढंग से मिसेज़ वासवानी को ताकने लगा...था। मिस्टर वासवानी ने इस बार अपनी मिसेज़ का ध्यान उस तरफ जाते हुए देखा तो भुनभुनाया --'इनडीसेंट !'

मिसेज़ वासवानी ने माथे पर आए पसीने के मोतियों को रूमाल से चुन लिया।

और इस मोती चुनने की घटना के आधे मिनट बाद ही वह ज़बर-दस्त हादसा क्लब में हुआ जो आज तक के इतिहास में कभी नहीं हुआ था...

मिस्टर वासवानी प्लेट से कांटा लेकर उठे—परमार की मेज़ तक गए और उसके नथुनों में कांटा फंसाकर नाक नोच लाए।

सिसकारियों, दबी हुई चीखों, आश्चर्य से फटी आंखों और तमाम मार्कों से क्लब का वातावरण गूंजने लगा। औरतें बहुत ज़्यादा डर ...थी और मिस्टर वासवानी कांटे में फंसी हुई परमार की नाक को ...लिए हुए फंडे की तरह उठाए हुए थे।

मेज़ों से कोई नहीं उठा। सब अपनी-अपनी जगह बैठे हुए आश्चर्य ...र दुःख प्रकट कर रहे थे। मिस्टर वासवानी बायें हाथ में कांटा उठाए दाहिने हाथ से खाते जा रहे थे।

परमार ने जब कटी हुई नाक से रूमाल हटाया, तो उसकी शक्ल की ...गो हुई सूरत पर एक हल्की हंसी गूंज गई और एक महिला ने अपने ...ी की बांह दबाते हुए कहा—'लुक्स मोर हैण्डसम। ऊं !'

बैंड दूसरी धुन बजाने लगा था।

और जोड़े धीरे-धीरे फ्लोर पर उतरने लगे थे......एक अजीब

थिरकन सबपर हावी होती जा रही थी। मिस्टर वासवानी के सामने से प्लेटें हट चुकी थीं और परमार अपनी नाक पर रूमाल दबाए बैठा था। तभी एक आवाज़ सुनाई पड़ी···लेडीज़ एण्ड जैन्टिलमेन ! यह आवाज़ वासवानी की थी और उन्होंने अंग्रेज़ी में बोलना शुरू किया था। उनके बायें हाथ में वह कांटा था जिसपर परमार की नाक उलझी हुई थी।

"लेडीज़ ऐण्ड जैन्टिलमेन !···

उस रात का पहला प्रवचन यही था—

"आप कर्नल परमार को जानते हैं ! उनकी तारीफ करने का यह वक्त नहीं है। दूसरे महायुद्ध के दौरान उन्होंने ईजिप्ट में हिन्दुस्तानी फौज और कौम के लिए बड़ा नाम कमाया है···जब मैं कौम का नाम लेता हूं, तो मुझे दुनिया की तमाम दूसरी कौमों की याद आती है······हर कौम एक नैतिक संकट से गुज़र रही है······आज इस जमाने में जबकि अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर हर कौम युद्ध और शांति की समस्या से जूझ रही है, हमारी कौम को एक बड़ी ज़िम्मेदारी उठानी है ! और उस वक्त जबकि दुनिया में हर तरफ यही पूछा जा रहा है कि नेहरू के बाद कौन ? नेहरू बाद कौन ?···

"ऐसे नाज़ुक वक्त में हमें बड़े हौसले और ज़िम्मेदारी से चीज़ों को समझना और सुलझाना है···

संयुक्तराष्ट्र इसी महान उद्देश्य को लेकर बनाया गया है लेकिन हम देख चुके हैं कि मानवता का एक निहायत खूबसूरत ख्वाब लीग ऑफ नेशन्स किन कारणों से धूल में मिल चुका है ! आज संयुक्तराष्ट्र फिर कमज़ोर होता दिखाई पड़ रहा है······कांगो के मसले को ही लीजिए ! ···यहां पर मुझे जटाका टेल्ज़ की एक कहानी याद आती है, खैर कहानी को छोड़िए क्योंकि मैं कर्नल परमार के बारे में कुछ कहने के लिए खड़ा हुआ था···

"कर्नल परमार की हरकतों को आप लोगों ने शायद नहीं देखा होगा ······अभी-अभी जो कुछ भी हुआ है, यह कांटा उसका सबूत है जिस पर उनकी नाक रखी हुई है ! यह सब यूहीं नहीं हो गया ····इस पूरी घटना के पीछे ईविन्ट्स का एक पूरा सिलसिला है ! आप जब उस सिलसिले को जानेंगे तो मेरी बात की ताईद करेंगे । मेरे उठाए हुए कदम को सही मानेंगे । उनकी नाक को इस तरह नोच लाने के पीछे मेरा कोई बुरा इरादा नहीं है, क्योंकि सब बातों के बावजूद मैं कर्नल परमार की बहुत इज्जत करता हू । उनकी वीरता और साहस का मैं कायल हू ·· काक्टेल्स बनाने की उनकी महारत पर पूरे क्लब को नाज़ है···

(तालियां)

"तो मैं यह कह रहा था कि हमे सबकी अच्छाइयों पर नज़र रखनी चाहिए । जहां तक अच्छाइयों पर नज़र रखने का सवाल है, मेरे ख़याल से इस नामी क्लब का हर मेम्बर इसीलिए बाहर इज्ज़त से देखा जाता है कि वह अच्छाइयों को देखता है···

"उपनिषद् मे कहा है, जिसके लिए मैं स्वामीजी का आभारी हू, जिन्होंने कुछ ही दिन पहले हमारे इस क्लब मे भाषण दिया था, कि दुनिया मे आत्मा ही सबसे बड़ी चीज़ है । आत्मा के बग़ैर दुनिया का कोई वजूद नहीं है । आज संसार मे हर जगह, हर मुकाम पर इसी आत्मा की ज़रूरत है—चाहे वह क्यूबा का मामला हो, कामन मार्केट का हो, अफ्रीका के काले लोगों का हो······कला, साहित्य और संगीत का हो ·· ·· आणविक अस्त्रों या शांति का हो !

"तो यह आत्मा ही सबसे बड़ी चीज़ है ! अपनी कौम ने, 'आत्मा' की महत्ता को पहचाना है, इसीलिए मुझे तकलीफ होती है जब मैं किसी की आत्मा को मरते हुए देखता हू ! कर्नल परमार की आत्मा भी मर रही थी । इसीलिए मुझे यह कदम उठाना पड़ा ताकि उनकी आत्मा को

आज एक धक्का लगे, वे समझें कि कुलीनता क्या है ? सभ्यता क्या है ? क्लबों में कैसे आया-जाया जाता है ? और यहां पर महिलाओं के साथ कैसे व्यवहार किया जाता है !

"आज, इस वक्त, जबकि मैंने उनकी नाक नोंच ली है, मैंने उनकी उसी आत्मा के दरवाज़े पर एक सभ्य दस्तक दी है। क्योंकि आत्मा के बग़ैर इन्सानी ज़िन्दगी का कोई मतलब नहीं है···कला, साहित्य, संगीत, समाजवाद और शांति का कोई मतलब नहीं है !

(बेपनाह तालियां !)

"इन लफ्ज़ों के साथ मैं अपनी बात खत्म करना चाहता हूं। मुझे अफसोस है कि मैंने आप लोगों का काफी वक्त लिया · धन्यवाद !"

फिर बेपनाह तालियों के शोर से पूरा क्लब गूंज गया। और मेज़ों के इर्द-गिर्द तारीफ की बातें शुरू हो गईं--'मिस्टर वासवानी इज़ ए जीनियस !'

'ही इज़ ए स्टोर हाउस आफ विज़डम ! ···'

'कमाल है···कांगो से लेकर सोल तक !'

और तरह-तरह की प्रशंसा-भरी फुस फुसाहटें चारों ओर होने लगीं। मिस्टर वासवानी की धाक इसीलिए थी। एक महिला ने तो यहां तक सुझाया कि 'वार्षिक दिवस' पर मिस्टर वासवानी का भाषण ज़रूर कराया जाए।

तालियों की गड़गड़ाहट काफी देर तक गूंजती रही थी। मिस्टर वासवानी परमार की नाक कांटे में उलझाए उसी तरह शान से बैठे थे और गर्व से अपने भाषण का असर देख रहे थे।

कर्नल परमार इस बीच उठकर चले गए थे, वे ब्रांडी में रूमाल भिगोकर अपनी नाक पर रखे रहे थे और कुछ भाषण देने के लिए तिलमिला रहे थे।

बैंड फिर बजने लगा था।

जोड़े फिर फ्लोर पर थिरकने लगे थे।

धुएं के नायलानी आंचल फिर उड़ने लगे थे।

तभी एक आवाज़ फिर सुनाई दी—लेडीज़ ऐण्ड जैंटिलमेन!

लोग उधर मुखातिब हुए। कर्नल परमार अपनी मेज पर खड़े थे, नाक पर ब्राडी से भीगा रूमाल रखा था, इसलिए उनकी आवाज कुछ नकसुरी हो रही थी।

"लेडीज एण्ड जैन्टिलमेन!"

परमार ने बोलना शुरू किया, तो हल्की हंसी बिखर गई।

"अभी-अभी मिस्टर वासवानी ने मेरे खिलाफ बहुत-सी बातें बड़े ही शाइस्ता ढंग से कही हैं, उनका लोहा मैं भी मानता हूं। इसीलिए मेरे मन में उनकी बड़ी इज़्ज़त है। आज की सोसाइटी में इतने समझदार और सभ्य लोग कम ही हैं। इतने बुद्धिमान और दुनिया की समस्याओं को गहराई से समझनेवाले और भी कम हैं!

"मैं पहले ही माफी मांग लेता हूं कि मैं उनकी तरह धाराप्रवाह और गम्भीरता से हर मसले पर नहीं बोल सकता! जैसाकि उन्होंने किया है। उनका सम्बन्ध कौम की हर समस्या से बहुत गहरा है, क्योंकि वे एक ज़िम्मेदार अफसर हैं। उनकी जानकारी की बराबरी करना भी मेरे वश में नहीं है।

"फिर भी मैं आत्मावाले मसले को उठाना चाहूंगा और निहायत शिष्टता से जो गालियां उन्होंने मुझे दी हैं, उनका प्रतिवाद करना चाहूंगा।

"आत्मा, जैसाकि आप सभीने सुना था, जब स्वामी जी ने यहीं इसी ऐतिहासिक क्लब में अपना भाषण दिया था, वह चीज़ है जो जलाने से जलती नहीं ··मारने से मरती नहीं, चोर उसे चुरा नहीं सकता और

नष्ट वह हो नहीं सकती ! सबके पास एक-एक आत्मा है···मेरे पास भी है...मैं नहीं जानता कि कांगो में, अफ्रीका में, संयुक्तराष्ट्र में और दुनिया की दूसरी अहम जगहों पर आत्मा का क्या इस्तेमाल हो रहा है, वह मर रही है या जी रही है ? पतित हो रही है या विकसित हो रही है, शांति के लिए क्या-क्या काम कर रही है; पर जहां तक मेरी आत्मा का सम्बन्ध है · मैं बड़े साफ शब्दों में कह देना चाहता हूं कि वासवानी साहब ने जो गालियां मुझे दी हैं उनका कोई असर कम-से-कम मेरी आत्मा पर नहीं हुआ है ।

"जब आत्मा अमर है · वह जलती नहीं, मरती नहीं, तो भला इन गालियों का क्या असर उसपर हो सकता है ? और आप समझदार लोगों ने वासवानी साहब के भाषण के दौरान जो हिकारत मेरे प्रति दिखाई है और जो थूका है

"क्योंकि आत्मा जलती नहीं, मरती नहीं, इसीलिए आपके थूकने के कोई निशान भी उसपर नहीं पड़ सकते !

बस मुझे यही कहना है !"

(बेपनाह तालियां !)

बैंड की आवाज़ तालियों की गड़गड़ाहट में डूब गई । गुणग्राहकलोगों में फुसफुसाहट शुरू हुई···'इन्टेलीजेंट चैप !

'ओरिजिनल इन्टरप्रटेशन !"

'भई हद है···क्या तोड़ा है बात को !'

तालियों की एक बौछार फिर हुई !

परमार ने आगे जोड़ा—"वासवानी साहब मेरी नाक कांटे से नोंचकर ले गए हैं ! मेरी समझ में नहीं आता कि नाक और आत्मा का सम्बन्ध क्या है ? और मेरी नाक नोंचकर वे किस तरह मेरी आत्मा पर असर डाल सकते हैं !"

तालियों के शोर में सब कुछ डूब गया।

"मैं चाहता हूं कि मेरी नाक वापस दिलवाई जाए!" परमार ने आन्दोलन करने के लहजे में कहा। सभी लोगों की भौंहें इस आन्दोलनी अंदाज में कही हुई बात को सुनकर टेढ़ी हो गईं। यह हवा आज पहली बार इस क्लब में आई थी।

'ही वान्ट्स ए मूवमेंट।'

'डैम हिम!'

और फिर बैंड की तीसरी धुन बजने लगी।

जोड़े फ्लोर पर थिरकने लगे।

मिस्टर वासवानी आखिर अपनी मिसेज़ को लेकर फ्लोर पर उतर पड़े। कर्नल परमार के चेहरे में जो खासियत पैदा हुई थी, उससे खिंचकर बहुतों ने चाहा था कि वह उनके साथ आज डांस करे···कितना अजीब होगा आज उसके साथ नाचना? एक अजीबो-गरीब अनुभव जो आज तक किसी महिला को प्राप्त नहीं हुआ होगा।

परमार ब्रांडी से भीगा रूमाल नाक पर चिपकाए चुपचाप अपनी मेज़ पर बैठा जिन पी रहा था।

दोनों प्रवचन समाप्त हो चुके थे।

वासवानी बायें हाथ में काटे पर परमार की नुची नाक उलझाए अपनी मिसेज़ के साथ ही नाच रहा था। थिरकते हुए जोड़े बार-बार सर्किल लेते हुए उन्हींके पास से चक्कर काट रहे थे।

आखिर रात भीगने लगी। एकाएक हाल की बत्तियां कुछ पलों के लिए गुल हुईं और चुम्बनों की आवाज से वातावरण भर गया।

बत्तियां जलते ही एकाध राउण्ड और हुआ और लोग थके-मादे लड़खड़ाते कदमों से बाहर निकलने लगे।

वासवानी काटे को उसी तरह लिए हुए अपनी मिसेज़ के साथ बाहर

जाने लगा तो क्लब का हैड वेयरा बड़े ही शालीन ढंग से उनके पास पहुंचा और अदब से बोला, "हुजूर कांटा !"

"ओह कांटा !"

मिसेज़ वासवानी ने अपने मिस्टर की तरफ एक क्षण भरी-भरी शोख़ नज़रों से देखा और ठुनकते हुए धीरे-से कहा, "डार्लिंग प्लीज़··· ऊं !"

और वासवानी का रुख देखकर उन्होंने रूमाल से पकड़कर कांटे में फंसी हुई नाक निकाल ली। वासवानी ने कांटा हेड वेयरे को पकड़ा दिया जो बाअदब उसे लेकर भीतर चला गया। मिसेज़ वासवानी ने एक मुस्कराती हुई नज़र अपने मिस्टर पर डाली और कर्नल परमार की मेज की ओर चल दीं।

परमार के पास पहुंची तो उनकी आंखों में एक अजीब रंगीनी थी और परमार की आंखों में एक नशा।

उन्होंने रूमाल हटाकर परमार के चेहरे पर वह नुची हुई नाक चिपका दी और अपने बैग से छोटा पफ निकालकर उसके किनारों को पाउडर से यकसां कर दिया।

क्लब में बचे हुए लोगों ने फिर तालियां बजाईं और खुशी ज़ाहिर की।

और इस तरह प्रवचनोंवाली उस रात का अंत हुआ, जो इस क्लब के इतिहास में हमेशा याद की जाएगी।

ब्रांच लाइन का सफर

ब्रांच लाइन की गाड़ी और ऊपर से सर्दियों की बरसाती शाम। डिब्बे में कतई भीड़ नहीं थी। आठ-दस मुसाफिर दुबके हुए इधर-उधर आराम से लेटे या बैठे थे। मैं इसलिए ऊपरवाली सीट पर लेट गया था कि रास्ते में कोई टोके न। अंधेरे और सुनसान स्टेशन पर सिर्फ इंजिन की आवाज गूंज रही थी। डिब्बे में ठिठुरन थी और बत्तियां कोहरे में लिपटकर टिमटिमा रही थीं। इतने में तम्बाकू के दो व्यापारी कम्बल लपेटे हुए घुसे और इधर-उधर आराम से लेट सकने के लिए अच्छी जगह की तलाश में आंखें घुमाने लगे। मेरे नीचे वाली सीट खाली थी, शायद एक कम्बल में गुजारा कर सकने के कारण वे दोनों व्यापारी एक ही सीट पर आ बैठे, अभी गाड़ी चली नहीं थी। एकाध बेटिकट आवारा लड़के भी सर्दी में ठिठुरते हुए घुसे और उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया। गाड़ी का डिब्बा बक्से की तरह बंद हो गया और बीड़ियों का धुआं धीरे-धीरे बुरी तरह भरने लगा। नीचे की सीट पर एक कम्बल में लिपटे हुए दोनों व्यापारी कुछ देर तक गालियां दे-देकर तम्बाकू और दूसरी चीजों के भाव-ताव तथा सरकारी करों के बारे में

बात करते रहे, फिर एक बोला, "यार, बड़ी सर्दी है। एक कम्बल में कैसे गुज़ारा होगा ?"

दूसरे व्यापारी ने शायद इधर-उधर देखा और कुछ रुककर बोला, "सब हो जाएगा। स्वामीजी को नहीं देखते······" पहला व्यापारी शायद उसकी बात की चित्रात्मक स्थिति को देखते ही हंस पड़ा। मैं किताब पढ़ने लगा था कि एकाएक उसी व्यापारी की आवाज़ सुनाई पड़ी, "ऐ बाबूजी···" वह शायद मुझसे कुछ कहना चाहता था। मैंने गर्दन नीचे लटकाई तो वह बोला, "आपको सर्दी नहीं लग रही है ?" अकस्मात् ऐसे बेमानी प्रश्न के लिए मैं तैयार नहीं था। एकदम बोला, "मैं आपका मतलब समझा नहीं।" और मैंने उसे गौर से देखा—वह दुपल्ली टोपी लगाए था और मफलर को टोपी के ऊपर से कसकर गले में गांठ बांधे हुए था। बंद गले के कोट के कालर पर मैल पाइपिन की तरह जमा था और उसकी आंखों में काजल की लकीरें थीं। एकाएक देखने पर वह आदमी नितान्त चरित्रहीन और रसिया लगा। उसने काजल लगी आंखें मटकाकर कहा, "हम तो साहब इतने कपड़े पहने हैं, ऊपर से लाल इमली का यह कम्बल ओढ़े हैं, पर सर्दी नहीं जाती···" कहकर वह सी-सी करने लगा और उसने बड़े बेहूदे ढंग से आंखें चलाईं।

मैं उपेक्षापूर्ण ढंग से अपनी सीट पर सीधा हो गया, तो दूसरे व्यापारी की आवाज़ सुनाई दी, वह कह रहा था, "अरे तुझे नींद नहीं आती तो बाबू साहब को क्यों परेशान कर रहा है। बेमतलब छेड़ता है।"

"यह रात भला सफर करने की है।" उस बेहूदे व्यापारी ने दूसरे को जवाब दिया और बड़े ही कुत्सित ढंग से सी-सी करने लगा, "कहां ला पटका यार! दस-बीस रुपये ही खर्च होते, रात तो आराम से कटती···"

"और कोई देख लेता तो जो जूते पड़ते।" दूसरे व्यापारी ने कहा,

तो वह बेहूदा व्यापारी एकदम बोला, "अबे, अपनी जेब का नामा ढीला करते हैं। किसीसे मांगने नहीं जाते। दस-बीस रुपये इन औरतों पर भी फेंकने चाहिए······आखिर जाड़े-पाले में मुंह पर पौडर-लाली लगाके बैठती हैं······ हम जैसों का ही आसरा है बेचारियों को।"

"तुम जैसे आदमियों का नहीं, तुम्हारी जेबों का। ऐसे कहो।" उस दूसरे व्यापारी ने कहा और शायद एक ही कम्बल के कारण अपनी ठंडी टांगें उसके पेट में घुसेड़ दीं। वह बेहूदा व्यापारी भद्दी-सी गाली देते हुए बिगड़ा, "खामख्वाह टांगें घुसेड़े दे रहा है······तेरी टांगों में कुछ दम भी है···?"

"इन टांगों का दम सब वहीं निकल गया······इसीलिए समझा रहा हूं बेटा। समझे।" दूसरे व्यापारी ने कहा तो वह बेहूदा फिर बोला, "दुनिया का मजा लेके सब सन्यासी बन जाते हैं। ऐसा कोई बता जो सारे मजे छोड़कर सन्यासी हो गया हो···मैं मान लूंगा उसकी बात···"

"बदनलाल हलवाई को देख। भरी जवानी में साधु हो गया।" उस दूसरे आदमी ने कहा तो वही बेहूदा व्यापारी बात काटकर बोला, "अरे बस रहने दे यार मेरे! मालूम है तुझे कुछ······उसकी लुगाई शादी के बाद घर गई, तो फिर लौटी ही नहीं। जनखा था साला, साधु हो गया···इज्जत बचाने के लिए ढोंग रच लिया बदमास ने।"

"बेपर की उड़ाने में तुझे मजा आता है। दस साल लंगोट बांधा था बदनलाल ने। वह तो उसका मन फिर गया बीबी से। बेकार की हांक देता है।" दूसरे ने कहा तो वह बेहूदा व्यापारी बिगड़ा, "अच्छा छोड़ मेरा कम्बल···एक तो रात-भर के लिए लाके इस ठंडी चट्टान पर डाल दिया, ऊपर से त्याग-संन्यास सिखा रहा है। तेरा तो खून ठंडा हो गया है "

गाड़ी कुहरे से भरे ठंडे मैदानों में से गुजर रही थी। इसलिए डिब्बे

की दीवारें वर्फ की तरह ठंडी हो गई थीं और खुले हुए वदन से छूते ही ऐसा लगता था, जैसे किसीने वर्फ में दवाई हुई तलवार से वार किया हो, और सुन्न पड़े शरीर से सर्द खून की धार वह-वहकर जगह-जगह भिगोती हुई चली जा रही हो।

मैं उन दोनों व्यापारियों की वातों से ही चिढ़ रहा था। पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय तथाकथित गंदी वातों, गंदी औरतों और गंदी आदतों से वैसे ही चिढ़ते और परहेज़ करते हैं, जैसे तथाकथित ब्रह्मचारी स्त्री के नाम से। और इस थोथी शालीनता, झूठी नैतिकता और खोखली संयमशीलता के पुलों के नीचे सभी गंदगियों के नाले धड़धड़ाते वहते रहते हैं।

मैं नाक सिकोड़कर अपनी सीट पर सीधा तो हो गया था, पर उनकी वातों को सुन न रहा होऊं, ऐसी बात नहीं थी। वह दूसरा आदमी फिर बोला, "हमने जो सुना था सो कह दिया···वैसे वदनलाल आदमी लंगोट-का पक्का था, इतना हमें मालूम है।"

"तो उसकी औरत को पागल कुत्ते ने काटा था ?" वही वेहूदा व्यापारी जवाव दे रहा था, "ये सब कहने की बातें हैं···" बात वदल-कर वह बोलता गया, "यार मार दिया तूने······" कहकर उसने फिर कुत्सित ढंग से सी-सी की और बोला, "गज़ब का जाड़ा है। हड्डी तक कांप रही है···"फिर वह वड़ी बेहूदी हंसी हंसा और सनकियों की तरह चीखा, "वाह भई वाह ! यह तेज तो हमने देखा ही नहीं।" उसने शायद किसी औरत की ओर इशारा किया होगा, जिसपर उसके साथवाला व्यापारी भी मज़ा लेकर ऐसे हंसा, जैसे लैमनड्राप चूस रहा हो। उस वेहूदे व्यापारी ने, खंखार कर गला साफ किया और फर्श पर पिच्च-से थूका फिर उसने मुझे पुकारा, "ऐ वावूजी, ऐ वावूजी !"

मैंने फिर गर्दन लटका दी तो उसका चेहरा देखकर एकाएक मन ही-मन हंस पड़ा। वह सुर्मा लगी आंखें पूरी-पूरी फाड़े हुए था और उसका

निचला होंठ आश्चर्यपूर्ण मुद्रा में बाहर लटक आया था। मुझे आपने देख उसने सामनेवाली सीट की ओर इशारा किया और वे दोनों व्यापारी आँखें मिलाकर हंस पड़े। मैंने उधर देखा —वह कोई औरत नहीं एक सन्यासीजी केवल लंगोटी लगाए नंगी सीट पर चित्त लेटे हुए थे उनका शरीर नागफनी की झाड़ी की तरह लग रहा था। सर्दी से रोंगटे खड़े थे और पूरे शरीर पर भभूत मली हुई थी। उनकी लपेटी हुई जटाएं तकिये का काम दे रही थीं। बाहें छाती पर ऐसे कसी हुई थीं जैसे वे प्राणायाम की मुद्रा में मर गए हों और किसीने उन्हें उसी तरह चित्त लिटा दिया हो।

"ब्रह्मचारीजी हैं।" वही बेहूदा व्यापारी बोला, "देख रहे हैं······ हम सर्दी में मरे जा रहे हैं और ये मस्त लेटे हैं।" स्वामीजी को इस तरह निष्काम और निष्कम्प भाव से लेटा देख मुझे हंसी आ गई। मेरी हंसी से बढ़ावा पाकर वह दूसरा व्यापारी बोला, "देख ले तू! इसे कहते हैं शरीर की साधना।" उसने यह बात व्यंग्य में कही थी और इस तरह से देखा, मानो कह रहा हो कि आंखें बंद रखने के बावजूद वे सब देख-सुन रहे हैं। 'इस भीषण सर्दी में उनका नश्वर शरीर भले ही कष्ट पा रहा हो, पर उनकी आत्मा अवश्य जाग रही होगी। देख लो, इसे कहते हैं ब्रह्मचर्य का तेज! सर्दी साली इस के सामने क्या चीज है।" उस बेहूदे व्यापारी ने कहा और ऐसे देखा, मानो प्रशंसा उसके मन से फूटी पड़ रही हो, वह फिर बोला, "वाह साहब वाह! भीतर ताकत की भट्टी सुलग रही है," और वह सी-सी करके हंसा। मेरी हंसी भी फूट पड़ी तो स्वामीजी ने पलकें खोलीं, उनकी लाल-लाल आंखें ऐसे चमकीं जैसे किसी ने कोटरों की खाल उधेड़ दी हो और रक्तिम मांस झांक उठा हो।

"यह देखिए।" उस बेहूदे व्यापारी ने मुझे बीच में सानते हुए कहा,

"आंखों में अंगार दहक रहे हैं।"

स्वामीजी के मुख पर क्रोध विखर उठा और वे अपनी रक्तिम आंखों से उसे ताकते रहे, पर उस आदमी पर कोई असर नहीं हुआ था। वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ, एकदम संन्यासीजी से पूछ बैठा, "कहां स्थान है आपका बाबाजी ?"

स्वामीजी ने क्रोध के आवेश में आंखें बंद कर लीं और उनके आंखें बंद करते ही वे दोनों फिर हंस पड़े। स्वामी जी करवट बदलकर लेट रहे, तो उन दोनों ने उनके सामान का निरीक्षण किया······एक तूंबी के साथ डलिया में बहुत-से गुलाब के फूल रखे थे, खड़ाऊं की जोड़ी थी और एक बोरे में शायद कुछ नाज-पानी था। उस बेहूदे व्यापारी ने उनके बोरे को टटोलते हुए एलान किया, "इसमें स्वामीजीकी मृगछाला वगैरह है।" स्वामीजी ने तड़पकर करवट बदली—"बच्चा लोग मानता नहीं है! तुमसे कुछ मतलब है।"

"आपके स्थान कहां है ब्रह्मचारीजी ?" उसी व्यापारी ने उनकी बात अनसुनी कर पूछा। स्वामीजी के क्रोध का पारा चढ़ गया था और लगता था कि वे अभी इस दुर्मुख को उठाकर दे मारेंगे। पर वह बेहूदा व्यापारी उसी तरह निश्चिंत भाव से अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए उन्हें ताक रहा था।

गाड़ी कब रुक गई और भीषण सर्दी में भी अपनी परम्परा को तोड़-कर कब टिकट चेकर साहब हमारे डिब्बे में आ पहुंचे, यह पता ही नहीं चला। सबके टिकट दिखा चुकने के बाद स्वामीजी ने भी आशा के विपरीत अपना टिकट दिखाया और प्रवचन देने लगे, "हम मठों के साधू-संत हैं बच्चा! गंगोत्री के पास हमारे स्थान हैं। हमारा कार्य है तपस्या और भगवद्-स्मरण···समझे बच्चा। ईश्वर तुम्हारा उद्धार करे!" अन्तिम उन्होंने शाप देने की तरह कहा और जटाओं में टिकट खोंसकर

लेट गए। उस बेहूदे व्यापारी ने टिकट बाबू को आंख से कुछ इशारा किया और उन्होंने बढ़कर बोरे को टटोलते हुए पूछा, "स्वामीजी, इसमें क्या है?"

"उसमें स्वामीजी का बाघम्बर वगैरह है।" उसी व्यापारी ने बदमाशी से कहा और आंखों-आंखों में मुस्कराया, "और क्या हो सकता है, आपको शक होता है तो खोलके देख लीजिए···'ब्रह्मचारी' पुरुष हैं।" और वह खुद बोरे के मुंह पर बंधी रस्सी खोलने लगा। स्वामीजी तमककर उठे, "क्या करता है बच्चा!"

"खोलिए···इसे खोलिए···" टिकट बाबू ने रोब में कहा और उस बेहूदे व्यापारी ने पूरा बोरा खोल डाला—

एक पोटली गांजा और अफीम। दो जनानी धोतियां और सोने-चांदी के बारह गहने।

स्वामीजी को सब सामान के प्लेटफार्म पर उतार लिया गया और स्टेशन मास्टर तथा पुलिस के दो-तीन सिपाही भी आ गए। और स्वामीजी अपनी सफाई देने लगे, "बच्चा, यह हमको कतई नहीं मालूम, किधर से आया? हम साधु-सन्यासी आदमी, हमारा इससे क्या लेना-देना।" और पुलिसवाला जैसे सूंघते हुए बोला, "किस डकैती का हिस्सा मारकर आ रहे हो साधुजी।"

वही बेहूदा व्यापारी, जो नीचे उतर आया था, बोला, "कैसी बातें कर रहे हो हवलदार साहब। पहले स्वामीजीसे दरयाफ्त कीजिए···"

स्वामीजी जुटी हुई भीड़ को देखकर सिटपिटाए, पर अपने को सम्भालते हुए बोले, "इसमें हमारा कुछ नहीं है, भाई।"

"ये जनानी साड़ियां और गहने कैसे हैं?" स्टेशनमास्टर ने पूछा, तो स्वामीजी बुदबुदाए, "हमको परेशान करता है···बाबा लोग को सताता है। ये सब एक माताजी का है। वो दान करने के लिए हरिद्वार ले

जाती हैं ?

"किधर हैं वह माताजी ?" सिपाही ने कड़ककर पूछा, तो एक सोलह-सत्रह वर्षीय लड़की ज़नाने डिब्बे से उतरकर आई। उसे देखकर स्वामी जी माथा पकड़कर बैठ गए और थर-थर कांपने लगे। भीड़ में से एक आवाज़ आई, "यही हैं इनकी माताजी।" और वह बेहूदा व्यापारी उन्हें कांपते देख बोला, "अरे ब्रह्मचर्य का तेज सब चला गया···स्वामीजी को सर्दी लग रही है······कोई कम्बल देना भाई।" और उसने अपना कम्बल कसकर लपेट लिया। साथवाले व्यापारी को कंधे से ठेलते हुए उसने उस लड़की की ओर इशारा किया और सी-सी करके भूखी निगाहों से उसे ताकने लगा।

सिपाहीके पूछने पर वह लड़की बताने लगी, "इस साधु ने हमें तीन सौ में खरीदकर आठ सौ में बेच दिया है।"

"किसके हाथ बेचा है।" सिपाही ने पूछा तो रोते हुए वह लड़की बोली, "आगरेकी कोई बाईजी है······उन्हींके हाथ। ये हमें वहीं-पहुंचाने जा रहा है। बाईजीकी नौकरानी डिब्बे में हमारे साथ बैठी थी, अभी उतरकर कहीं चली गई···"

"अरे हज़ार हम देते हैं।" उस बेहूदे व्यापारी ने बेशर्मी से कहा और सिपाहीकी गालियां सुनता हुआ डिब्बे में आ बैठा। उन सबको वहीं छोड़कर गाड़ी चल दी थी और वह व्यापारी कह रहा था, "हम साले किसीसे नहीं डरते, हर काम खुलेआम डंक की चोट करते हैं······ और वह दूसरा व्यापारी उसकी ओर ताक रहा था, उसे गाली देते हुए वह फिर बोला, "यह रात भला सफर करने की है ?"

और मैं सोच रहा था—इन ब्रह्मचारियों ने वेश्याओं को जन्म दिया है और व्यभिचारियों ने इन्हें जिन्दा रखा है। और इन ब्रह्मचारियों तथा व्यभिचारियों के कई स्तर तथा दर्जे हैं और······तभी उस बेहूदे व्यापारी

ने मुझे फिर पुकारा, "ऐ बाबू साहब···कम्बल ठीक से ओढ़ लीजिए, नहीं तो सर्दी खा जाइएगा।" और वे दोनों अब मेरे ऊपर हँसने लगे थे। मैं लेट गया था और वह कह रहा था, "यार बड़ी गलती हो गई, हमें इसी स्टेशन पर उतर जाना चाहिए था।"

गाड़ी कुहरे से भरे ठंडे मैदानों में से फिर गुज़र रही थी और दीवार से गुले हुए बदन का हिस्सा छू ही ऐसा लगता था जैसे किसीने बर्फ़ में दबाई हुई तलवार से वार किया हो और सुन्न पड़े शरीर में सर्द खून की धार बह-बहकर जगह-जगह भिगोती हुई चली जा रही हो।

अपने देश के लोग

वहां पर वहुत-से आदमी इकट्ठे थे। सबकी गर्दनों में पट्टे पड़े हुए थे। उन पट्टों पर उनके नाम, व मर्ज़ लिखे हुए थे।

दीनदयाल : उम्र ४० साल, मर्ज़ : ज़्यादा तनख्वाह मांगता है। सलाम नहीं करता।

सदानंद : उम्र २५ साल, मर्ज़ : दफ्तर की स्टेशनरी चुराता है।

इब्राहीम : उम्र ३० साल, मर्ज़ : सही वात कहने से नहीं डरता।

एस० सुब्रमण्यम : उम्र २८ साल, मर्ज़ : अपने अफसर से ज़्यादा काविल है।

सुब्रतो घोष : उम्र २६ साल, मर्ज़ : गलत वात नहीं मानता।

सुवोध पकड़ासी : उम्र २५ साल, मर्ज़ : लिख-लिखकर अफसर की शिकायत करता है।

सभीकी गर्दनों में पड़े हुए पट्टों पर नाम और तरह-तरह के मर्ज़ लिखे हुए थे। वे सब चुपचाप लाइन में खड़े हुए थे। एक सैक्शन आफी-

सरनुमा कम्पाउण्डर दस-ग्यारह फाइलें पकड़े हुए हर आदमी की जाँच कर रहा था। साथ ही जेब से एक-एक गोली निकालकर सबको देता जा रहा था। जो गोली खा चुके थे, वे चुपचाप खड़े थे। बाकी शोर मचा रहे थे।

कुछ-कुछ अस्पताल की तरह का वातावरण था। बहुत-से अफसर लोग डाक्टरों की तरह सफेद लम्बा कोट पहने हुए फुर्ती से इधर-उधर आ-जा रहे थे। वे व्यस्त थे। उनके साथ कुछ विदेशी विशेषज्ञ भी घूम रहे थे, जो उन डाक्टरनुमा अफसरों को चलते-चलते हिदायतें और राय दे रहे थे। बरामदों में फाइलों के ढेर थे। फर्श से छत तक वे ढेर लगे हुए थे। उनकी वजह से आमदरफ्त में बड़ी कठिनाई हो रही थी। नर्सों की जगह पर बीड़ी पीते हुए चपरासी थे, जो अपने डाक्टर अफसरों को देखकर बीड़ी छुपा लेते थे, दूसरे अफसर के सामने पीछे रहते थे।

वहाँ सरगर्मी बहुत थी। मैं जनसम्पर्क अधिकारी के कमरे में घुस गया। वे पत्थर की मूर्ति की तरह चुपचाप बैठे हुए थे। मुझे देखते ही पास खड़े चपरासी ने धीरे से उनके पलक खोल दिए और मुझे देखने लगे। चपरासी ने फिर धीरे से उनका दाहिना गाल खींच दिया, जिससे उनके होंठ लम्बे हो गए और उनपर मुस्कराहट नज़र आने लगी।

मैंने शालीनता से पूछा, "यह कौन-सा विभाग है और क्या काम करता है?"

जनसम्पर्क अधिकारी ने चपरासी की तरफ देखा। चपरासी ने उनकी ठोढ़ी के नीचे लगे एक बटन को दाबा और आवाज़ निकलने लगी, "भारत में जनतन्त्र को स्थापित करने के लिए ऐसे नये आदमियों की ज़रूरत है, जो सिर्फ मन लगाकर अपना काम करें......अनुशासन को समझें। जो सपने न देखा करें। अपनी बुद्धि का ज्यादा इस्तेमाल न करें। खाना-कपड़ा और रहने की जगह न मांगें। बढ़ती हुई कीमतों से परेशान और नाराज़ न हों। प्रदर्शनों और आन्दोलनों में भाग न लें क्योंकि इससे प्रगति

में बाधा पड़ती है। यह विभाग कर्मचारियों के सुधार के लिए खोला गया है......ताकि वे मन लगाकर सिर्फ अपना काम करें।" इतना बोलकर जनसम्पर्क अधिकारी चुप रह गए। चपरासी ने बटन बंद कर दिया था।

मैंने फिर पूछा, "लेकिन सरकार और कुछ अच्छी गैर-सरकारी संस्थाएं भी जनता के लिए तमाम काम कर रही हैं। देश में आर्थिक समानता और नये समाज की स्थापना के लिए कदम उठा रही हैं। फिर आपका विभाग इस तरह के कर्मचारी क्यों करना चाहता है?"

इस बार चपरासी ने उनके कान के ऊपर लगे बटन को दबा दिया और वे बोलने लगे, "असल में बात यह है कि सरकार या अच्छी गैर-सरकारी संस्थाओं के हाथों में कुछ नहीं है। वे हाथी के दांत हैं, जिन्हें देखकर जनता खुश होती है। असली दांत मुंह के अन्दर हैं। उन्हींके किए सब होता है......ये जितने समाज-सेवक और राजनीतिज्ञ हैं, सब बिके हुए हैं!......" वे कुछ कहने जा रहे थे कि चपरासी ने दिमाग का बटन बंद कर दिया। जनसम्पर्क अधिकारी एकाएक चुप हो गए। चपरासी ने उनके होंठों को दबा दिया। होंठ चिपक गए और वे मेरी ओर टुकुर-टुकुर ताकते रह गए।

मैं उनके कमरे से निकल आया। . मदे में होता हुआ भीतर पहुंचा। वहां बहुत-से अफसरनुमा डाक्टर एक आपरेशन की मेज़ के चारों ओर खड़े थे। कुछ विदेशी विशेषज्ञ भी थे। एक कोने में फाइलों का अम्बार लगा हुआ था और एक क्लर्क कुछ लिखने में चुपचाप व्यस्त था। मेज़ के पास ही खुकरी लिए हुए दो सर्जन खड़े थे। हाथों में दस्ताने थे।

तभी कोनेवाले क्लर्क ने आवाज़ लगाई—"दीनदयाल, उम्र ४० साल, मर्ज़—ज्यादा तनख्वाह मांगता है। सलाम नहीं करता!"

दीनदयाल अन्दर आया। वह घबराया हुआ था। चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। जैसे ही वह भीतर घुसा, उन अफसरनुमा डाक्टरों ने उसे

पकड़ लिया। उसने सबको देखा—कुछ अफसरों को उसने पहचाना। तभी छुरी लेकर खड़े हुए दोनों सर्जन आगे बढ़े।

एक सर्जन ने उसे टटोला और दूसरे से कहा, "पहले इसकी परेशानी निकाल लीजिए।"

सर्जन नम्बर दो ने पास की मेज़ से कोई दवा उठाकर दीनदयाल को सुंघाई और उसके मुंह में हाथ डालकर एक आरमानुमा चीज़ खींच ली। उस चीज़ को मेज़ की बगलवाली प्लेट में रख दिया गया।

पहले सर्जन ने इशारा किया और दूसरे सर्जनने छुरी के एक झटके से दीनदयाल की खोपड़ी की हड्डी उतार दी। खोपड़ी की हड्डी उतरते ही एक छोटी-सी डायरी निकलकर तकिये पर गिर पड़ी। पास खड़े अफसरनुमा डाक्टरों ने दौड़कर दीनदयाल की खोपड़ी में झांका—वह खाली थी। एक डाक्टर ने डायरी उठाकर देखनी शुरू की। उसमें बहुत-सी बातें नोट थीं—

जितना कर्ज़ा उसने लिया था, वह ब्योरे से उसपर लिखा हुआ था। डाक्टरों ने हिसाब जोड़ा तो कर्ज़ा पांच हज़ार निकला। उसी डायरी में वे दिन भी टंके हुए थे, जब-जब उसकी तनख्वाह में बढ़ोतरी हुई थी… डाक्टरों ने हिसाब लगाया, बाई[illegible] नौकरी में उसका कुल एक सौ दस रुपया बढ़ा था। पचा[illegible] उसने नौकरी शुरू की थी और अब एक सौ पच्चानवे पा रहा था।

इसके अलावा डायरी में वे रकमें भी नोट थीं, जो वह अपने बेटे को पढ़ाने के लिए हर महीने भेजता रहा था और वक्त-वक्त पर बाढ़ सहायता कोष और सुरक्षा कोष में उसने दी थीं। उसमें उन घरवालों और अस्पतालों के नाम भी दर्ज थे, जिनमें उनकी मृत्युएं हुई थीं या जन्म हुए थे।

अभी डाक्टर लोग वह डायरी पढ़ ही रहे थे कि सर्जन ने फिर इशारा किया। उस दूसरे सर्जन ने छुरी डाल-डालकर उसकी दोनों आंखें

नया किसान

कुंवरजी उस समय अपनी होने वाली पत्नियों का ज़िक्र कर रहे थे। पुराने ज़मींदार या सामन्ती घरानों का जैसा चलन रहा है, ठीक वैसे ही गुण और ऐब कुंवरजी में भी थे। परम्परानुसार कुंवरजी को हमेशा एक ऐसे दोस्त की ज़रूरत रहती थी जो उनकी बातें ध्यान से सुने और तर्क न करे। क्योंकि तर्क के तूफान के सामने उनकी खयाली नाव के पाल फट जाते थे और कश्ती चकराकर झूठ के भंवर में डूब जाती थी। उन्हें सिर्फ ऐसा दोस्त चाहिए था जो "अच्छा" और "फिर क्या हुआ" के साथ रुचि से दास्तान सुनता जाए। यही कारण था कि थोड़े समझदार दोस्त उनके कभी अपने न हो पाए। रोज़ नहीं तो चौथे-पांचवें उनके साथी बदल जाते थे।

कुंवरजी शहर के पुराने ज़मींदार घराने के सबसे बड़े लड़के थे और कपड़े बदल-बदलकर दिन-भर बाज़ार में इधर से उधर घूमा करते थे। मोटरवालों से उनकी खासी दोस्ती थी, क्योंकि ड्राइवर उन्हें ज़िले-भर की गाड़ियों, मोटर साइकिलों और बन्दूकों के ब्योरे बताया करते थे।

उस समय भी बात कुछ ऐसी ही उखड़ी-उखड़ी चल रही थी जैसी

मेशा चला करती है । शाहआलम ड्राइवर ने उनकी बात बतरकर एव-म बताया, "पाण्डेजी शेवरले गाडी तीन हजार म बिक रही है । इजन हुत मजबूत है, बस बॉडी खराब है ।"

"हजार मे खरीदकर साली को रगवा के पाच हजार में चलता किया जाए ! क्यो ?" कुवरजी ने उसकी बात में बात मिलाई और आगे बढ़ ए, "तो भरतपुर की जिस लडकी के बारे मे मैंने बताया वह जरा अप-डेट है ·· ··नाक-नक्शा तो खैर कहना ही क्या ? अब बताइए, उसे इस च्चे शहर मे लाकर क्या करू ?"

"अरे साहब, शादी करके किसी बड़े शहर मे बस जाइए ।" बैनू ने हा, तो कुवरजी हस पड़े, "फिर यहा कौन देखेगा ? आपकी दया से भी इतना है कि चार पीढ़िया आराम से खाएगी । पिताजी का क्या ठिकाना आज मरे कल दूसरा दिन । रियासत तो दुधारू गऊ की तरह है····जितना खिलाइए-पिलाइए उतना दुह लीजिए हा, तो दूसरी ी बात पानीपत से चल रही है । बाप उसके जज है, सात भाइयो मे अकेली बहिन है । तो साहब मैं देखने पहुचा तो वह खातिर, वह खातिर कि क्या बताऊ । सुबह बकरा कट रहा है तो दोपहर मे तीतर आ रहा है और शाम को मुर्गा । गुलाबजल से स्नान, मखमल की तौलिया और इत्र मे बसे हुए कपड़े । कुछ न पूछिए ·· ··"

"तो आपको पहनने के लिए कपड़े भी उन्होंने दिए थे ।" शाहआलम ने पूछा तो कुवरजी को थोड़ा नागवार गुजरा । बोले, "कपड़े मेरे थे साहब । कार से उतरते ही मेरा बक्सा भीतर चला गया, बस इत्र मे बसा दिया गया कपड़ों को · ·शाम होते ही बैंटनर गाड़ी, ड्राइवर और लडकी मुझे दे दी गई ·· ·" कुवरजी खुब खिलखिलाकर मुस्कराए—"अब साहब खूबसूरती का क्या बयान करू · ···कुन्दन बदन, साचे मे ढले हुए अग, सुराहीदार गर्दन, अनारदाने से दात और हिरनी-सी निगाहे !

बस कुछ न पूछिए······और ड्राइवर भी एक नम्बर का समझदार !" कहकर उन्होंने शाहआलम की ओर देखा। शाहआलम कुछ इस तरह मुस्कराया जैसे वह ड्राइवर उसीका शागिर्द रह चुका हो। एकदम कुछ याद करते हुए बोला, "डिप्टी साहब की डबल बोर रायफिल तो आपने देखी होगी।"

"वाह साहब, वाह, अचूक निशाना था डिप्टी साहब का ! और साहब उन निगाहों का निशाना भी क्या था ! कैडलक गाड़ी, समझदार ड्राइवर और काफिर निगाहें !······डबल बोर रायफिल !"

इतने में ही गुलज़ारी लाल मुख्तार आ गए। कुंवरजी ने उनके बुढ़ापे का खयाल करते हुए पहले तो जैरामजी की और फिर कुर्सी पर उनके बैठने का इन्तज़ार करने लगे। मुख्तार साहब ने बैठते हुए पूछा, "कहो भाई कुंवर, बंगलोर टेलीफोन कम्पनी के शेयरों का क्या हुआ ?"

कुंवरजी ने कड़वेपन को पीते हुए कहा, "बाबूजी की समझ में बात ही नहीं आती। कुछ नहीं हो, चार-छः हज़ार सालाना की आमदनी बंध जाती।"

पोपले मुंह में पान को चलाते हुए मुख्तार साहब ने कहा, "वो तो है ही······वो तो है ही।" उनका रुख देखकर कुंवरजी ने बात चालू की, "मुख्तार साहब, आप तो पके हुए आदमी हैं, पांच शादियां कर चुके हैं ! इस बारे में मुझे कुछ बताइए······हैं, हैं······"

"अरे ज़रूर भाई ज़रूर ! मुझे साथ ले चलो, लड़कियां देखकर ऐसी चुन दूंगा कि बस !······" कहकर मुख्तार साहब ने खूब जल्दी-जल्दी पान चबलाना शुरू कर दिया, और देखो कुंवर, मुझसे कोई खतरा भी नहीं है ! "इतना कहते हुए उनके मुंह से फुव्वारा-सा छूट पड़ा। घर के चलन के मुताबिक आव-आदर तो सबका होता था पर बातों में बड़प्पन का ख्याल सिर्फ हैसियत से ही होता था। इसीलिए कुंवर जी

बुजुर्गों में भी ऐसी-वैसी बात करने में हिचकते नहीं थे'' '' आखिर ठाकुर घराने का खून उनकी रगों में था।

कुंवरजी का घराना बहुत पुराना और शहर में अपनी तरह का अकेला ही था। उनकी बैठक बाबा साहब के जमाने से सजी हुई थी। उसमें पहुंचकर हमेशा ऐसा लगता था जैसे किसी बहुत पुराने महल में आ गए हों जो सदियों से बंद पड़ा हो। लम्बी-चौड़ी बैठक की वीरानी और रोशनदानों पर खामोश बैठे हुए कबूतरों से उसकी निर्जनता और भी बढ़ जाती थी। हर ओर आठ-आठ दरवाज़े थे, जिनमें रंगीन शीशे जड़े हुए थे—उन दरवाज़ों के पार ऐसे कमरों का बोध होता था, जिनमें शायद लाशें भरी हुई थीं और मकड़ियों के जालों ने उनपर एक झीना पर्दा डाल रखा था''' 'बैठक में अजीब घुटी-घुटी सीलन-भरी महक व्याप्त रहती थी। दीवारों पर बने हुए शौर्य-शृंगार के चित्र। छतों से लटकते हुए झाड़-फानूस और पुराने जूतों की तरह बेरंग और ऐंठा हुआ फर्नीचर! अंग्रेज़ी ज़माने की तलवारें और सनदें! जार्ज पंचम का बड़ा-सा चित्र और अलमारियों के खानों में बाबा आदम के ज़माने की रखी हुई फाइलें। बिछे हुए पुराने कालीन और दीवान पर सर-कटे मुर्दे की तरह लुढ़का हुआ मसनद।

और अब घर में शान-शौकत के नाम पर दो पुराने नौकर हैं, जिनकी वफादारी की कहानियां मशहूर हैं और उजड़े हुए लान में एक टूटी हुई कार पड़ी है, जिसपर बैठ-बैठकर बच्चे अपने पुराने घर की शान-शौकत का अहसास करते हैं। ज़मींदारियां खत्म होते ही इस कोठी की दीवारें पुताई के लिए मुहताज रहने लगीं और मरम्मत के अभाव में पलस्तर उखड़ने लगा, पर शहर में अभी भी मुरौवत चाटुकारी और लिहाज़ का बोलबाला है। लेकिन पीठ पीछे की बातें चलती ही हैं, "बड़े घरों के लड़के खराब ही निकलते हैं' '' 'कुंवरजी को ही देख लो, है

किसी लायक ! गधे का गोवर है—न लीपने का न जलाने का !"

और ऐसी वात नहीं कि अपने निकम्मेपन और व्यर्थता का बोध कुंवर जी को न हो। इतना तो वह समझते ही हैं। कुंवरजी को इस वात का वहुत गम है कि दुनिया में शांति छाइ हुई है क्योंकि उनका कार्यक्षेत्र तो युद्धस्थल ही है। अपनी लम्वी-चौड़ी देह को शान से फुलाते हुए कुंवरजी कहा करते हैं, "लड़ाई शुरू हो तो मेरे लिए कमीशन धरा हुआ है।······मेजर बनते क्या देर लगती है ? क्या ज़माना आ गया है साहव ! हम राजपूतों की तो तवाही हो गई······लानत है जो खाट पर मरूं···ऐसा हुआ तो खुद गोली मार लूंगा साहव······"फिर कुंवरजी वड़े गर्व के साथ कहते—"पिताजी ने अपनी मौत के लिए वन्दूक चुनकर रख दी है······और मुझे हुक्म दिया है कि जब भी उनकी आखिरी घड़ियां हों, मैं उन्हें खाट से उठाकर वीरगति प्राप्त कराऊं······इसीलिए कहीं वाहर नहीं आ-जा पाता। पता नहीं किस दिन ज़रूरत पड़ जाए।" और उसी बन्दूक से कुंवरजी कभी-कभी जंगली कवूतरों का शिकार भी करते हैं। इधर पिछले तीन-चार सालों से कुंवरजी का वह पुराना दमखम लुप्त हो गया है और वे शहर से कभी-कभी एकाध महीने के लिए गुम हो जाते हैं। एक वार जब वे दो-तीन महीने वाद लौटकर आए तो उन्होंने अपने जाग्रत् भाग्य का किस्सा सुनाया—"हिमालय की तराई में मेरे फूफाजी की वहुत वड़ी स्टेट है······मरते वक्त वो सब मेरे नाम कर गए, उसी जायदाद की देखभाल के लिए जाना पड़ता है साहव। चार मोटरें हैं, नैनीताल में दो होटल हैं, हज़ारों एकड़ के फार्म है, पांच ट्यूव वैल हैं और कोठी क्या, उसे तो किला समझिए······पर साहव ऐसी जागीर का मुकुट बांधकर क्या करूं जिसमें जान से हाथ धोना पड़े ! क्यों साहव गलत कह रहा हूं ?"

कुंवरजी का यह किस्सा कुछ दिनों चलता रहा। इसके वाद एका-

एक उनमें तब्दीली दिखाई दी—"जैसे एक ही जगह जल में खड़े-खड़े नाव के पाल आरमे-पार फटने लगते हैं और सूराखों से पानी रिसने लगता है उसी तरह कुंवरजी की जिन्दगी के पाल फटते नजर आ रहे थे······दाढ़ी बढ़ी हुई, जूतों में सिलाई और टुकड़े लगे हुए, चेहरा बेरौनक और एड़ियां फटी हुईं। कोठी पर वे कभी दरियां झाड़ते हुए और कभी ऊनी कपड़ों को धूप दिखाते हुए नजर आते। उनका चेहरा उतरा-उतरा रहता और वे अब बहुत कम बाजार की महफिलों में दिखाई पड़ते। एक बार दिखाई दिए तो दवा की शीशियां लिए हुए थे। पर चाल में वही अकड़ थी। उसके बाद वे कुछ दिनों के लिए नजर से ओझल हो गए······लौटे तो बड़ी शान-शौकत से। आते ही बाजार की महफिलें फिर गर्म हुईं और कुंवरजी हरएक से मिलने के लिए उतावले दिखाई पड़ते थे। बात असल में यह थी कि उनके बयान के मुताबिक उन्होंने कानपुर में एक शानदार होटल चालू किया था जिससे फिलहाल तीस रुपये रोज की बचत हो रही थी—"और साहब क्या जिन्दगी है? एक से एक ठाट-बाट के लोग अपनी बीवियों के साथ आते हैं, खाने-पीने क्या है······मौज के लिए आए और चले गए। पैसा तो बहता है, जो थाम सके वह थामे!" यह उन्होंने शाहआलम ड्राइवर से कहा था और उसे विश्वास दिलाया था कि राज्य के बड़े-बड़े मन्त्रियों और अफसरों से उनकी बेहद जान-पहचान हो गई है, वह चाहे तो प्राइवेट कैरियर का लैसंस खड़े-खड़े बन सकता है या लोहे और सीमेंट का परमिट फौरन मिल सकता है! शाहआलम ने प्रशंसा-भरी नजरों से उन्हें देखा और बड़े अदब से कहा, "कुंवर साहब, इतना रुपया मेरे पास कहां जो प्राइवेट कैरियर खरीद सकूं या लोहे और सीमेंट का व्यापार कर सकूं? आप कुछ मदद करें तो मुमकिन हो सकता है!"

"साहब, चार पैसे की मदद हम दे सकते हैं पर खुद यह व्यापार

करना मेरे वस का नहीं !" कुंवरजी ने कहा तो शाहग्रालम ने वड़े शाइस्ता ढंग से ग्रर्ज़ किया, "कुंवर साहव, ज़वानदराज़ी के लिए मुग्राफी चाहूंगा, पर यह होटल वगैरह चलाना ग्राप जैसे रईसों को फवता नहीं !"

कुंवरजी एक मिनट सोचने के लिए मजवूर हो गए ! उन्हें लगा जैसे सचमुच यह काम उनकी इज़्ज़त के खिलाफ है। धीरे से वोले, "तो क्या करूं साहव ? कोई धंधा ऐसा नज़र नहीं ग्राता जिसमें ग्रामदनी भी हो ग्रौर इज़्ज़त भी···"

सुनकर शाहग्रालम ने सुझाया, "ग्राप लोहे ग्रौर सीमेंट के परमिट हासिल करके पुख्ता व्यापार कीजिए। ग्राराम से घर में वैठिए। दो नौकर रखिए ग्रौर काम करवाइए होटल चलाना तो नीचों ग्रौर वद-माशों का पेशा है साहव······मैं ग्रपने जुमले के लिए मुग्राफी चाहूंगा ······ज़रा गौर कीजिए हुज़ूर···"

कुंवरजी ने उनकी वात पर गौर करके लोहे ग्रौर सीमेंट के व्यापार को ही ग्रपनी इज़्ज़त ग्रौर घराने के ग्रनुकूल पाया। रियासत के पुराने वकील साहव मिलने ग्राए तो विगड़ते हुए ज़माने की वातें चल निकलीं, "कुंवरजी ज़माना वहुत खराव है ग्रौर दिन-व-दिन विगड़ता ही जा रहा है······ईश्वर की दया से ग्रापके यहां सव कुछ है फिर भी कल किसने देखा है······रियासत का भी कोई ठिकाना नहीं, कल कानून वन जाएगा कि एक से ज़्यादा इमारत कोई नहीं रख सकता··· ग्राखिर इतनी लम्वी ज़िन्दगी का छोर किसने देखा है। ग्राप कुछ काम-वाम शुरू कीजिए···

धीरे से मुस्कराकर कुंवरजी ने वताया, "वकील साहव ! मैं निगाह खोलकर चल रहा हूं। जो वात ग्रापने कही, वह मेरे दिमाग में वहुत पहले से थी। इसीलिए मैंने लोहे ग्रौर सीमेंट के परमिटों की दरख्वास्त दे रखी है, वस एक वार लखनऊ गया कि परमिट ग्राया। यहीं 'कुंवर

आयरन एण्ड सीमेंट डिपो' खुलेगा वकील साहब। पेशा वह करे जिसमें इज्जत हो। क्यों साहब गलत कह रहा हूं !"

लेकिन वकील साहब को बात कुछ जची नहीं, धीरे से बोले, "यों करने को कुछ भी किया जा सकता है पर कुंवरजी इसमें वह बात नहीं है जो रईसों की रईसी भी बनाए रखे और पैसा भी दे·······" फिर कुछ सोचकर बोले, "कानपुर इतना पास है, आप थोक कपड़े की कोठी क्यों नहीं खोल लेते ? नाम का नाम और पैसे का पैसा ··· 'दूसरे इस व्यापार में ऐसों से लेन-देन चलेगा जो और कुछ नहीं, सफेदपोश तो है ही··· ··कायदे के आदमियों से सम्बन्ध बनेगा और बाद में कपड़ा छपाई का एक कारखाना चालू कर दीजिए ·· ··और दस आदमियों का पेट भरेगा !"

वकील साहब की यह बात उन्हें इतनी जची कि थोक कपड़े की कोठीवाले सेठजी से मिलते ही उनसे न रहा गया। न चाहते हुए भी कह ही गए, "सेठजी, अब मैंने तय किया है कि कुछ काम शुरू करूं ! पड़े-पड़े अच्छा नहीं लगता· ····"

"अरे कुंवरजी, आपको किस चीज की कमी है ? शगल के लिए शुरू करें तो कुछ भी कर देखिए······" सेठजी ने अपना चश्मा साफ करते हुए कहा। कुंवरजी को उनकी बात कहीं बहुत भीतर सहला गई थी, पर अपने को तुच्छ जताते हुए बड़ी शालीनता से बोले, "कमी तो नहीं, पर सेठजी जमाना देखकर सोचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। कल तक जमींदारियां थीं, आज पारे की तरह हुकूमत हथेली से ढुरक गई··· मैंने तय किया है कि कपड़े के व्यापार में हाथ लगाया जाए और छपाई का एक कारखाना साथ-साथ खोला जाए···"

"आप भी किस हिमाकत में पड़ने जा रहे हैं कुंवरजी ! यही पापड़ बेल रहा हूं। भगवान का नाम लेकर कान पकड़िए इस व्यापार से ··

मैं तो भुगत रहा हूं······बस समझिए कि गर्दन फंसी हुई है इसलिए यह सब ढो रहा हूं। मेरा रुपया न फंसा होता तो कोयले की ठेकेदारी कर लेता। इस रोज़गार में दुहरी मार है। उधार माल न दीजिए तो घर में गांठें सड़ाइए और दिसावर में उधार दे दीजिए तो किस्मत को रोइए। एक पैसा वसूल नहीं होता। ग्रामदनी धेले की नहीं और इनकम-टैक्स हजारों का! जो गांव में हो सब इसमें झोंककर एक दिन लंगोटी लगाकर निकल जाइए -- बस! कोई ठिकाना नहीं बाज़ार का···"

"आप तो मेरी हिम्मत तोड़ रहे हैं!" कुंवरजी ने चालाकी से कहा।

"मैं आपको दुरुस्त राय दे रहा हूं कुंवरजी! खुद हाथ जलाए बैठा हूं। इससे अच्छा तो यह है कि आप वनस्पति घी की एजेन्सी लीजिए और रुपया बटोरिए······आखिर आदमी घी के बगैर जिन्दा नहीं रह सकता। रोज़ाना ज़रूरत की चीज़ है और देशी घी तो सपना होता जा रहा है! हज़ार पानेवाला भी इसे इस्तेमाल करता है और दस कमाने वाला भी चार आने का घी ज़रूर ले जाता है। अपने शहर में कोई एजेन्सी है भी नहीं······यहीं से माल सप्लाई कीजिए और आस-पास के ज़िलों को भी घेर लीजिए! गांव वाला भी अब यही घी मांगता है! हवा का रुख देखिए कुंवरजी!"

"बात तो आपकी किसी हद तक ठीक है पर······" कुंवरजी कह ही रहे थे कि सेठजी होंठ निकालकर बोले, "कपड़े की कोठी ही अगर जंच गई है तो आइए सौदा कर लें! आप लाख के अस्सी हज़ार दीजिए बीस हज़ार का घाटा ही सही······मैं तो भाई इससे पिंड छुड़ाना चाहता हूं!"

सेठजी की बात कुंवरजी के जहन में समा गई। मालूम करने के लिए पूछा, "वनस्पति घी की एजेन्सी आसानी से मिल सकती है?"

"अरे कुंवरजी, अब आप इस तरह कहेंगे! यह तो खुला हुआ-

व्यापार है और फिर आप जैसा मोअज़्ज़िज़ आदमी बीस हज़ार लगाकर दो लाख का माल भर सकता है !"

दो लाख के माल वाली बात कुंवरजी के दिमाग में टकराती रही ·····लोग उन्हें मोअज़्ज़िज़ आदमी समझते हैं ! इतनी साख है उनके घराने की। उनका मन झूम उठा। जिस बन्दूक से वे पिताजी को वीर-गति प्राप्त कराने वाले थे, उससे उन्होंने उसी दिन एक जंगली कबूतर का शिकार किया और शाम के खाने पर अपने अज़ीज़ दोस्त मकरदसिंह को बुलाया। खाते-खाते कुंवरजी ने बड़ी दरियादिली से कहा, "भाई मकरद यार, तुम भी क्या झख मार रहे हो तहसील की नौकरी में ··· हिम्मत करो तो ऊंचे पैमाने पर कोई बिजनेस शुरू किया जाए !"

"क्यों, कुछ सोचा है ?" मकरद ने धीरे से मुस्कराते हुए कहा, "हां, आखिर यह रईसी का खाली ढोल कब तक पीटोगे !"

बात कुंवरजी के पार हो गई, पर उसकी सच्चाई ने उनका मुंह बंद कर दिया, पर जैसे इज़्ज़त बचाते हुए बोले, "खैर, अभी तो मेरी ज़िन्दगी तक तो कोई फिक्र नहीं है पर इस घराने के होने वाले बच्चे इस शान-शौकत को क्या जान पाएंगे। हम भोग रहे हैं तो हमारा फर्ज़ है कि वे भी जानें कि किस घर में जनमे थे···"

"यार तू बड़ा समझदार हो गया है !" मकरद बोला तो कुंवरजी अपनी कीली पर आ गए। हाथ रोककर कुछ चिन्ता से बोले, "सच पूछो तो सब ढोल ही-ढोल है ·····क्या पता था कि यह ज़माना भी आएगा ? पढ़-लिख लेते तो हज़ार रास्ते थे। अब थोड़ा बहुत जो भी है, वह सिर्फ़ रुपये का ज़ोर है ·····वह भी साला खिसकता जा रहा है। आमदनी के ज़रिये सब बंद हैं पर खर्चे चौगुने हैं ! और अब इस तरह घर में पड़े रहना बहुत सालता है !"

"तो क्या करने का विचार है, कुछ सोचा है ?" मकरंद के पूछने ही

कुंवरजी ने पूरा प्लान सामने पेश कर दिया"……वनस्पति घी का मार्केट दिन-व-दिन वढ़ता जा रहा है। मैं सोचता हूं अपने ज़िले की एजेन्सी ले लूं। घर वैठे माल सप्लाई करूं।"

"सूझ तो अच्छी है ! पता करो तो कुछ तय किया जाए !" मकरंद वोला।

"मैंने सव पता कर लिया है। समझो पूरी वात कर ली है। खैर यार, घर में पाई नहीं है पर लोगों पर रौव इतना है कि साले लखपती समझ रहे हैं। वीस हज़ार लगाकर दो लाख का माल मिल जाएगा। अभी मैदान में नहीं उतरे पर साख इतनी ज़वरदस्त है !" कुंवरजी का माथा गर्व से उठता जा रहा था और उनके सीने में उवाल आ रहा था।

"लेकिन बीस हज़ार लगाने के लिए है !" मकरंद ने कहा तो उनके उफान पर ठंडा छींटा पड़ गया। और चवलाकर वोले, "यह मसला तो अहम है ! क्या मुसीवत है यार !……लुटे हुए ज़मींदारों को वड़ी रकम कोई उधार भी नहीं देता…

"तो कोई छोटा काम शुरू करो, ऐसा काम जिसमें हींग लगे न फिटकरी और रंग चोखा आए !……तुम्हारी ज़मींदारी में इतने ऊसर पड़े हैं, ईंटों का भट्टा वड़ी आसानी से शुरू किया जा सकता है। रुपया भी नहीं लगेगा और ऊसर पड़ी घर की ज़मीन का इस्तेमाल भी हो जाएगा ……मिट्टी सोना बन जाएगी, सोना ! हमारे नायव साहव ने रिटायर होकर भट्टा खोला, आज लखपती वने वैठे हैं……और फिर तुम्हारे पास वेकार ज़मीनों की भला क्या कमी ?" मकरंद ने कहा तो इससे कुंवरजी की आंखों में चमक आ गई। इस तरफ ध्यान ही नहीं गया था। घर में लक्ष्मी वैठी है और हम वाहर खोज रहे हैं ! "हां, आसानी-से कितनी पूंजी से यह कारावार चालू हो सकता है ?"

"ज़्यादा-से-ज़्यादा एक हज़ार रुपया !"

बस ! एक हजार ! इससे सस्ता कारबार और क्या होगा ? बस बात बन गई थी। दूसरे दिन इत्तफाक से गाव में परिचित मुखिया घूम पड़े तो कुवरजी ने सामंती अदाज़ से उन्हें सूचित किया --"गाव मे ईंटो का एक भट्टा खुलवाए दे रहा हू ! बेकार पडी जमीन इस्तेमाल मे आ जाएगी ! क्यो, ठीक है न !"

"सरकार जो मर्जी हो आपकी। बहुत अच्छी बात सोची आपने !" घाघ मुखिया ने यह जमाई। हम तो आपकी रियाया है सरकार। गवर-मिंट चाहे जो करे पर आपके दादा परदादा और बड़े मालिक के अहसान बहुत हैं हम गरीबो पर······आप लोगो ने तो आना ही छोड दिया उधर······इस बहाने सरकार के दर्शन होते रहेंगे।"

"अब क्या करें आके मुखिया ! अपनी बेइज्ज़ती कराए······ अच्छा भी नही लगता" कुवरजी ने बडी उदासी से कहा तो मुखिया ने बात काट दी, "आप नाता तोड लें सरकार, हम तो भी हुकुम के तावेदार हैं। इतनी जमीनें पडी हैं·· ···सरकार चाहे तो भट्टा क्या दस फारम खोल लें······काम करने के लिए हम सब मौजूद है। किसीकी मजाल है जो मना कर जाए सरकार· ''

कुवरजी के जहन मे बात कौंध गई। बोले, "ज़मीन से इतना पुराना नाता है, इसकी सेवा करके तुम लोगो का पेट भरते रहे और अपना पालते रहे··· ··तुम समझते हो गाव से कटकर हमे कम मलाल हुआ है ······पर करें क्या ?"

"सरकार के लिए अब भी सब कुछ हो सकता है।" मुखिया कह रहा था, आप फारम खोल के राजा की तरह बैठें सरकार। बड़े-बड़े जमी-दारो ने फारम खोले हैं······टिरक्टर लाए हैं ······फटफटिया गाडी की तरह आराम से टिरक्टर पर बैठे किसनई कर रहे ··· ·आप तो पढ़े-लिखे आदमी है सरकार······जहा पचास मन पैदा होता है वहा चार सौ मन

उगजेगा।…"

और यह बातें सुन-सुनकर कुंवरजी का मन नाच-नाच उठता था। बोले, "तो खोलूं फार्म !"

"अरे सरकार, जब आप हमसे पूछेंगे ! हुक्म दें सो किया जाए…… आप लोग ज़मीन के नहीं हमारे मालिक थे ! जो कहें सरकार !" मुखिया ने कहा और एक बाग का एक सूखा पेड़ काट लेने की इजाज़त लेकर चला गया।

इसके बाद तीन महीने तक कुंवरजी गुम रहे ! वे कहां चले गए, किसीको खबर नहीं थी……एक दिन अकस्मात् वे तेजी से डाकखाने की ओर जाते हुए दिखाई दिए तो दोस्तों ने रोक लिया, "कहो यार कुंवर, दिखाई ही नहीं पड़ते……किधर जा रहे हो आजकल……सुना बीबी चुनने गए थे।"

कुंवरजी का चेहरा खिल गया, अपनी खाकी पतलून को पेट पर सरकाते हुए बोले, "अब बीबी की ज़रूरत नहीं।"

"अरे क्या हुआ ? एकदम बीबी की ज़रूरत खत्म हो गई ?" सत्यपाल ने मज़ाक किया तो कुंवरजी बड़ी गंभीरता से बोले, "गांव में फार्म खोल लिया है……अब तो किसान हो गए भाई……अच्छा ज़रा डाकखाने तक होता आऊं," कहकर वे चलने को हुए तो सत्यपाल ने आस्तीन पकड़ ली, "फिर हो लेना डाकखाने…"

"नहीं भाई, कुछ बड़ी ज़रूरी किताबों की वी० पी० आई है…… एग्रीकलचर की किताबें मंगवाई थीं…"

कुंवरजी ने रुकते हुए आंख मारकर कहा, कभी आओ उधर पिक-निक पर। ऐसी नायाब जगह पर फार्म है कि बस ! आम के बगीचे में एक कमरा बनवाया है, वहीं ट्रैक्टर का गैरेज है और सामने तालाब। सिंघाड़े की बेल तो ऐसी फैली है कि क्या बताऊं यार, कभी आओ खाने

......" कुंवरजी ने सांस ली और बोले, "और छोकरियों की कमी नहीं .....तालाब पर एक-न-एक महरानी ही रहती है...।"

"वाह जी वाह ! यह रही असली बात !" शर्मा ने कहा तो कुंवरजी ने आंखें भरकाई, बोले, "यार गांव की जिन्दगी भी क्या है ? स्वर्ग समझो... ...अभी फार्म खोला है, एक गोशाला और खोलूंगा... ...भूसे-चारे की कमी नहीं, इतना धान होता है कि सौ जानवर पल जाएं !"

कुंवरजी की बात सुनकर सत्यपाल ने आंखें टेढ़ी कीं और कुछ सोचकर पूछा, "ट्रैक्टर खुद चलाते हो !"

"और क्या ?" रोज सुबह चार बजे उठकर बिना नागा ट्रैक्टर चलाता हूं और वहीं ट्यूब वैल पर नहाता हूं !" कुंवरजी ने फर्राटे से कहा तो सत्यपाल ने कुरेदा, "काहे की खेती कर रहे हो ?"

"भई अभी तो यह परख रहे हैं कि जमीन किस चीज के लायक है.... जिसके लायक जमीन होगी, बस उसीकी खेती शुरू ......" कुंवर बोले । सत्यपाल ने आगे पूछा, "क्या-क्या बोया है ?"

"इस बार तो पूरा फार्म बीस-पचीस हिस्सों में बांट दिया है । एक हिस्से में गेहूं, एक में कपास, एक में चना और इसी तरह मक्का, उरद, गन्ना, सरसों, आलू, प्याज़, सौंफ, मटर, दालें, ज्वार, बाजरा .....यानी सभीका बीज डाला है !" कुंवर बोले जा रहे थे, "अरे मिट्टी की जात तो अब कोई हमसे पूछे !"

"रबी और खरीफ दोनों फसलें उगा रहे हो ?"

"दो क्या यार, पचीसों फसलें उग रही हैं ...." कुंवरजी ने बड़े गर्व से कहा, "गांव में पैदा हुए और वहीं मरेंगे अब तो .. ..कभी आना...... ज़रा जश्न रहेगा......?" और नये किसान कुंवरजी उठकर डाकखाने की ओर चले गए । उनके फटे पाल की नाव हवा के सहारे जिन्दगी के समन्दर में किस तरह चकराती रही, नहीं मालूम ।

लिया था। उन दोनों खाटों से बने हुए डबल-बेड पर चौबीसों घण्टे बिस्तर बिछा रहता था और जयप्रकाश बाबू का नाइट सूट वह बिला नागा सिरहाने रख लेती थी···

घर में चाहे और कुछ न आया हो, पर मोटर साइकिल के आ जाने से एक अजीब-सी सम्पन्नता लगने लगी थी।

"कुछ दिनों बाद नई खरीद लेना!"

"और क्या······इस पुरानी पर अच्छी तरह चलाना सीख जाऊंगा ······तब तक नई का नम्बर आ जाएगा······"

"एक रोज़ ज़रा हमें भी घुमा लाओ······कितने महीने हो गए हैं घर से बाहर गए हुए···"

"अब तुम अपने झंझट से निपट लो, तब घुमाने ले जाया करेंगे··· ···ज़रा-से में कहीं झटका-वटका लग गया तो तकलीफ में पड़ जाओगी···"

"ये झंझट तुम्हीं लगा देते हो······खिसको······उधर······" राधा बड़े प्यार से उलाहना देकर आहिस्ता से बगल में लेटकर सो जाती।

एक दिन जयप्रकाश बाबू दफ्तर से लौटे तो देर भी हो गई थी और मोटर साइकिल भी साथ नहीं थी। राधा ने देखा तो अचरज में पड़ गई। इससे पहले कि वह कुछ पूछे जयप्रकाश बाबू ने कहा, "ज़रा-सा तेल गरम कर देना···"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"वह साली मोटर साइकिल स्लिप हो गई······पुरानी तो है ही, पुरज़े चुस्त-दुरुस्त नहीं हैं······वह तो कहो, जान बच गई, नहीं तो हड्डी-पसली चूर हो जाती···"

"मोटर साइकिल कहां है ?"

"मरम्मत के लिए डाल आया हूं। चेन साली टूट गई······अगला

पहिया अलग हो गया। साला धुरी से उड़ गया..."

"बड़ी खैर हुई!" राधा ने आतंकित भाव से कहा।

और रात में जयप्रकाश बाबू अपनी कमर पर मालिश करवाते रहे।

"धमक लग गई है!" राधा ने मालिश करते हुए पूछा था।

"दर्द तो इतना हो रहा है कि लगता है साली हड्डी टूट गई है......"

"तुम मोटर साइकिल बेच डालो—लेना तो अब नई लेना। पुरानी चीज़ पुरानी ही होती है ..."

और जब मैकेनिक ने मरम्मत का खासा खर्चा बता दिया तो जयप्रकाश बाबू ने बारह सौ में खरीदी हुई मोटर साइकिल आठ सौ में बेच दी और रुपया बैंक में जमा कर आए।

"यह तुमने अच्छा किया......" राधा ने सुना तो बोली, "अब इस रुपये से कोई जरूरत की चीज़ खरीद लेंगे .....माधुरी रेडियो की लगाए हुए है . . . न हो तो ...."

"नहीं-नहीं, इसमें से पाई भी खर्च नहीं करनी है। आठ सौ में रुपया जोड़ते जाएंगे, तब नई मोटर साइकिल खरीद लाएंगे ..."

पर चौथे महीने ही जब घर में नया बच्चा आया तो खर्चे एकाएक खड़े हो गए और आठ सौ की रकम घटकर जब पांच सौ के करीब आ गई तो जयप्रकाश बाबू फौरन बाज़ार जाकर साढ़े चार सौ का रेडियो खरीद लाए। जो पचास ऊपर बचे थे, उनसे कुछ और छोटी-मोटी ज़रूरत की चीज़ें खरीद ली गईं।

और तब राधा ने पड़ोसिनों को एक बार फिर भाषण दिया—"कहने लगे, दिन-भर घर में अकेले जी ऊबता होगा .....रेडियो से ज़रा दुकेलापन हो जाता है .....नहीं ...नहीं, किस्तों पर नहीं, नकद लाए हैं। ये किस्त विस्त का झंझट कौन पाले, बहनजी!"

लिया था। उन दोनों खाटों से बने हुए डबल-बेड पर चौबीसों घण्टे बिस्तर बिछा रहता था और जयप्रकाश बाबू का नाइट सूट वह बिला नागा सिरहाने रख लेती थी···

घर में चाहे और कुछ न आया हो, पर मोटर साइकिल के आ जाने से एक अजीब-सी सम्पन्नता लगने लगी थी।

"कुछ दिनों बाद नई खरीद लेना!"

"और क्या······इस पुरानी पर अच्छी तरह चलाना सीख जाऊंगा ······तब तक नई का नम्बर आ जाएगा······"

"एक रोज़ ज़रा हमें भी घुमा लाओ······कितने महीने हो गए हैं घर से बाहर गए हुए···"

"अब तुम अपने झंझट से निपट लो, तब घुमाने ले जाया करेंगे··· ···ज़रा-से में कहीं झटका-वटका लग गया तो तकलीफ में पड़ जाओगी···"

"ये झंझट तुम्हीं लगा देते हो······खिसको······उधर······" राधा बड़े प्यार से उलाहना देकर आहिस्ता से बगल में लेटकर सो जाती।

एक दिन जयप्रकाश बाबू दफ्तर से लौटे तो देर भी हो गई थी और मोटर साइकिल भी साथ नहीं थी। राधा ने देखा तो अचरज में पड़ गई। इससे पहले कि वह कुछ पूछे जयप्रकाश बाबू ने कहा, "ज़रा-सा तेल गरम कर देना···"

"क्यों, क्या हुआ?"

"वह साली मोटर साइकिल स्लिप हो गई······पुरानी तो है ही, पुरज़े चुस्त-दुरुस्त नहीं हैं······वह तो कहो, जान बच गई, नहीं तो हड्डी-पसली चूर हो जाती···"

"मोटर साइकिल कहां है?"

"मरम्मत के लिए डाल आया हूं। चेन साली टूट गई······अगला

पहिया अलग हो गया। साला धुरी से उड़ गया...''

"बड़ी खैर हुई !" राधा ने आतंकित भाव से कहा।

और रात में जयप्रकाश बाबू अपनी कमर पर मालिश करवाते रहे।

"धमक लग गई है !" राधा ने मालिश करते हुए पूछा था।

"दर्द तो इतना हो रहा है कि लगता है साली हड्डी टूट गई है ... ." "तुम मोटर साइकिल बेच डालो—लेना तो अब नई लेना। पुरानी चीज पुरानी ही होती है ..."

और जब मैकेनिक ने मरम्मत का खासा खरचा बता दिया तो जयप्रकाश बाबू ने बारह सौ में खरीदी हुई मोटर साइकिल आठ सौ में बेच दी और रुपया बैंक में जमा कर आए।

"यह तुमने अच्छा किया......" राधा ने सुना तो बोली, "अब इस रुपये से कोई जरूरत की चीज खरीद लेंगे .....माधुरी रेडियो की लगाए हुए है.. ...न हो तो . . ."

"नहीं-नहीं, इसमें से पाई भी खर्च नहीं करनी है। आठ सौ में रुपया जोड़ते जाएंगे, तब नई मोटर साइकिल खरीद लाएंगे . ...."

पर चौथे महीने ही जब घर में नया बच्चा आया तो खरचे एकाएक खड़े हो गए और आठ सौ की रकम घटकर जब पांच सौ के करीब आ गई तो जयप्रकाश बाबू फौरन बाज़ार जाकर साढ़े चार सौ का रेडियो खरीद लाए। जो पचास ऊपर बचे थे, उनसे कुछ और छोटी-मोटी ज़रूरत की चीज़ें खरीद ली गईं।

और तब राधा ने पड़ोसिनों को एक बार फिर भाषण दिया—"कहने लगे, दिन-भर घर में अकेले जी ऊबना होगा . . ..रेडियो से ज़रा दुकेलापन हो जाता है......नहीं .. ..नहीं, किस्तों पर नहीं, नकद लाए हैं। ये किस्त-विस्त का झंझट कौन पाले, बहनजी !"

भरेपूरे-अधूरे

दिन-भर घर में रेडियो चहकता रहता। जयप्रकाश बाबू को संतोष होता कि चलो यह भी एक काम की चीज़ आ गई।

साबुत गोभी घर में पकी देखकर तो वे चकित ही रह गए कि तभी राधा ने गोद की मुन्नी को लिटाते हुए गर्व से पूछा, "कैसा लगा?"

"बहुत बढ़िया······कहां से सीखा?"

"रेडियो में खाना पकाने का प्रोग्राम आता है, उसीसे सीखकर बनाया है······गल गया है?" राधा बोली।

"बहुत बढ़िया······बढ़िया बना है!"

"रेडियो पर संगीत-शिक्षा का 'प्रोग्राम भी आता है। घर में हारमोनियम हो तो माधुरी सीख ले······अगले महीने से हारमोनियम सिखाने का पाठ शुरू कर रहे हैं रेडियोवाले······माधुरी का बड़ा मन है सीखने को······" राधा ने सहजता से कहा।

"पैसे कहां हैं?" जयप्रकाश बाबू ने सीधा-सा उत्तर दे दिया, "एक पाई नहीं बचती।"

"यही दिन हैं उसके सीखने के······कल को पराये घर चली जाएगी···"

"देखो······" जयप्रकाश बाबू ने कहा और उन्हें एकाएक लगा कि ऊपर उठता हुआ घर सहसा कहीं पर अटक गया है। राधा के नाखूनों पर पॉलिश है। खाटें भी डबल बेड बनी हुई हैं। बच्चे भी दूसरे कमरे में सोते हैं। नाइट ड्रेस भी एकाध धोब चल जाएगी······पर कहीं कुछ है जो रुक गया है और वह पूरे घर की खुशहाली को कैद किए हुए है। ज़्यादा अफसोस उन्हें नहीं हुआ, पर मन में बुरा ज़रूर लगता रहा।

"देख रहे हो, कितने बाल टूटने लगे हैं!" अपने बाल काढ़ते हुए राधा ने उन्हें दिखाया था, "इतनी-सी चोटी रह गई!" उसने छाती पर बाल लाकर अपने अन्दाज़ से नापते हुए कहा था।

"धनापन भी उतना नहीं रह गया है······" जयप्रकाश बाबू ने उसकी बात की ताईद में कहा, "यह एकाएक क्यों झड़ने लगे ?"

"जब से मुन्नी हुई है, तभी से झड़ने लगे हैं···· 'गाठ बराबर जूडा रह गया है !' उसने बाल लपेटकर छोटा सा जूड़ा बना लिया था ।

एक दिन बच्चों की हुड़दंग में रेडियो धड़ाम से नीचे आ गिरा। कैबिनट टुकड़े-टुकड़े हो गया। नाब्स की डण्डिया बुरी तरह भीतर घुस गईं और मरम्मत करनेवाले ने करीब नब्बे रुपये की मरम्मत बताई तो जयप्रकाश बाबू अचकचा गए। तनख्वाह में से नब्बे रुपये काटकर निकाल देना मुमकिन नहीं था। आखिर सोच-साचकर वे ढाई सौ रुपये ले आए और उन्हें फिर बैंक में जमा कर दिया गया।

"इसमें से अब एक पाई नहीं निकाली जाएगी······डेढ सौ और जोडकर नया रेडियो ही आएगा !" उन्होंने एलान कर दिया।

बच्चे भी खुश बने रहे कि यह फैसला सही है। जयप्रकाश बाबू को यह सन्तोष था कि घर की हालत में कोई खास फर्क नहीं आया था। राधा के पैर के नाखूनों पर अब भी पॉलिश चमकती हैं। बच्चे दूसरे कमरे में सोते हैं। नाइट ड्रेस जरूर फट गई है पर खाटें अब भी डबल बेड बनी हुई हैं। सिर्फ यह हुआ कि घर अपनी जगह पर रुका हुआ है। रहन-सहन जैसे ठहरकर रह गया है।

"फिर मुसीबत में डाल दिया न !" राधा ने जब एक दिन कहा तो जयप्रकाश बाबू अवाक् सुनते रह गए। उन्हें चुप देखकर उसने फिर उलाहना दिया, "कहती थी कि इन्तजाम कर लो······पर नहीं······ अब भुगतना······" उसकी आंखों में हल्की शोखी और होंठों पर मुसकराहट थी।

"यह तो तुम्हें ख्याल रखना चाहिए······"

"यह खूब रही !"

"बड़ी मुश्किल हो जाएगी······" जयप्रकाश बाबू ने कहा।

"पड़ोसवाली बहनजी को भी ज़रूरत पड़ गई थी······खतरा भी कोई नहीं हुआ। अस्सी रुपये में, एक ईसाई नर्स है, वह कर देती है···"

"दिखा लो।" जयप्रकाश बाबू ने बहुत आसानी से कहा और चुपचाप बैठ गए।

"अगले हफ्ते ही उन्हें बैंक से सौ रुपया लाना पड़ा और सब ठीक-ठाक हो गया।

और बचे हुए रुपयों में से एक सौ बीस का जब हारमोनियम लाकर उन्होंने माधुरी के सामने रख दिया तो राधा बहुत खुश हुई, "चलो, पैसा ज़रूरत की चीज़ में लग गया······माधुरी का बड़ा मन था!"

जयप्रकाश बाबू को भी खुशी हुई और बचे हुए तीस रुपयों की वे छोटी-मोटी ज़रूरतों की चीज़ें खरीद लाए।

वह हारमोनियम बहुत दिन बजता रहा। पर जब माधुरी का शौक थम गया तो उसे लपेटकर मेज़ के नीचे रख दिया गया।

कई हफ्तों बाद जब एक दिन माधुरी ने फिर स्वर-साधना शुरू करनी चाही तो देखा कि उसकी धौंकनी की खाल चूहों ने काट डाली है। लकड़ी भी वे जगह-जगह से कुतर गए थे।

"माधुरी के लिए कुछ सोचा?" एक दिन राधा ने कहा तो जयप्रकाश बाबू ने हल्की चिन्ता से उसे देखा।

'लिखा तो है एकाध जगह!" उन्होंने कहा।

"मैं आज दोपहर उधर बाज़ार गई थी तो बुआजी मिली थीं······एक लड़का बताया है उन्होंने!" राधा बोली।

"अच्छा······देख लेंगे!"

"और सुनो, यह हारमोनियम अलग कर दो, माधुरी बजाती-बजाती

भी नहीं। बस, पड़ा है······बगैर बाजा-मास्टर के सीखे भी तो कैसे······क्यों ?"

"कितने रुपये मिल जाएंगे······पड़ा रहने दो।" उन्होंने कहा।

"क्या फायदा······"

"अच्छा······"

और तीसरे-चौथे दिन जयप्रकाश बाबू हारमोनियम लेकर गए और सत्तर रुपये लेकर लौट आए। रुपये लाकर उन्होंने रामायण में रख दिए और बोले, "इसमें से कोई खर्चा मत करना, समझी······वक्त-जरूरत के लिए पड़े रहेंगे······"।

"हां······छोटी-मोटी जरूरतें आ ही जाती हैं!" राधा ने कहा, "चार पैसे पास हों तो अच्छा ही है।"

उन्होंने गौर से राधा को देखा। उसके पैर के नाखूनों पर पॉलिश चमक रही है। बच्चे दूसरे कमरे में ही सोते हैं। नाइट ड्रेस के टुकड़े घर में सफाई के काम आ रहे हैं। खाटें वैसी ही डबल बेड बनी हुई हैं।

"कल मैं जरा ऊन खरीद लाऊं?" कई दिनों बाद राधा ने कहा था, "उसमें से ले लूं, यह भी तो जरूरी ही है······मुन्ना के पास स्वेटर कहां है!" अपने बालों में तेल रमाते हुए राधा ने फिर अफसोस से अपनी चोटी को देखा और चुप हो गई।

"तुम्हारे बाल सचमुच बहुत गिर गए हैं······" जयप्रकाश बाबू ने बड़ी आत्मीयता से कहा।

"शादी के वक्त घर-भर में सबसे लम्बे बाल थे हमारे······" राधा बोली।

"वक्त कितनी जल्दी गुजर जाता है!" जयप्रकाश बाबू ने हसरत से उसे देखते हुए कहा।

"तुम्हारे बाल भी तो बहुत सफेद हो गए हैं······" राधा बोली।

"उमर का तकाज़ा है······"

"इतनी अभी कहां से हो गई है······तुमसे ज़्यादा उमरवालों के सियाह-काले बाल रखे हुए हैं !"

"तुम्हें आंवले के तेल से कुछ फायदा हुआ ?" जयप्रकाश बाबू ने पूछा ।

"कुछ भी तो नहीं हुआ······" राधा की आवाज़ में हल्की-सी निराशा थी ।

"और कोई तेल इस्तेमाल कर देखो······"

"कुछ होगा नहीं······ तेईस नम्बर वाली है न······गुप्ताजी के घर में······वे सब इस्तेमाल करके देख चुकी हैं······"

"उनके बाल तो बहुत अच्छे हैं······"

"नकली लगाती हैं······"

"ऊन खरीदने जाना तो तुम भी लेते आना···"

"मैं नहीं लाती······मुरदा औरतों के हों, कौन जाने······"

"अरे नहीं भाई, नायलन के भी होते हैं······इसमें क्या बात है··· समझीं······लेती आना······तुम्हारे जूड़ा अच्छा लगता है । बाल या दांत खराब हो जाएं तो आदमी कित्ता बूढ़ा लगने लगता है······"

और दूसरे ही दिन राधा बाज़ार जाकर तीन बच्चों के लिए पैंतालीस रुपये का ऊन खरीद लाई । घर लौटी तो जयप्रकाश बाबू खाट पर बैठे चाय पी रहे थे ।

'ठीक है !' ऊन दिखाते हुए राधा ने पूछा ।"

"अच्छे रंग हैं !" जयप्रकाश बाबू बोले, "यह तो हमने देखा ही नहीं था······"

"अच्छा लगता है ?" राधा ने अपने भरे जूड़े में पिनों को दबाते हुए कहा ।

"तुम तो बदल गईं…… ·" उनकी आंखों में प्यार की मद्धिम-सी लौ दमक उठी थी।

"सोलह रुपये बच गए थे, सो उनमें से एक यह लेती आई हूं!" कहते हुए राधा ने एक पैकिट जयप्रकाश बाबू के हाथ में पकड़ा दिया, "सोचा कि कोई जरूरत की ही चीज लेती चलूं……नहीं तो ये सोलह भी यूं ही उड़ जाते।"

"है क्या?"

"देख लेना……"

"अरे, यह तुम नाहक लेती आईं।" डिब्बा खोलकर शीशी देखते हुए जयप्रकाश बाबू बोले, "इससे कहीं पूरी तरह बाल काले होते हैं? टिकाऊ थोड़े ही है……"

"बार-बार लगाने से हो जाते हैं……" राधा बोली, "लाओ, रख आऊं……कल छुट्टी है, लगा लेना……"

"सब खर्च कर आईं?"

"सात रुपये बचे हैं……पांच-सात दिन तो निकल जाएंगे…… महीना भी पार आ लगा है। और अब फिलहाल कोई ऐसी खास जरूरत भी नहीं है……चल जाएगा।" कहती हुई राधा ऊन व खिजाब की शीशी लेती हुई भीतर चली गई।

जयप्रकाश बाबू उसे गौर से देखते रहे……नाखूनों पर पॉलिश हैं। कमरे में खाटें भी डबल बेड बनी हुई हैं। बच्चे दूसरे कमरे में सोते हैं……घर भी ज्यों का त्यों है। तभी उन्हें एकाएक ख्याल आया और वहीं से बोले, "सुनती हो, वह, तसवीर के पीछे रख देना……"

अपने अजनबी देश में

एक बार मैं घूमता-घामता अपने अजनबी देश के एक शहर में पहुंच गया। लोगों ने बताया कि यह शहर बहुत ही अच्छा है। हिन्दुस्तान के सभी शहर ऐसे हो जाएंगे। बात असल में यह थी कि हिन्दुस्तान में लोकतंत्र आ गया था। लोकतंत्र के आने के कारण सब तरफ खुशहाली थी। हर तरफ निर्माण का काम चल रहा था। जिस सड़क से मैं पहली बार गुजरा, उसकी मरम्मत हो रही थी। एक मील पीछे मेरी टैक्सी थी······दायें-बायें मोटरें, स्कूटरें, ट्रक, बसें, सायकिलें भरी हुई थीं। उस रेलम-पेल में बड़ी रौनक थी। मैंने टैक्सी ड्राइवर से पूछा, "क्यों भई इस अजनबी देश में ऐसी रौनक पहले भी कभी होती थी ?"

"अजी पहले कहां! यह सब तो आज़ादी के बाद शुरू हुआ है। पहले तो रातों-रात सड़कों की मरम्मत हो जाती थी, जनता को पता तक नहीं चलता था······आज़ादी के बाद जब से जनता का राज हुआ है, सब काम जनता की आंख के सामने होता है। इसीलिए सड़कें खोद दी गई हैं! और रौनक बहुत ज़्यादा बढ़ गई है!" उस ड्राइवर ने बताया।

उसकी बात सुनकर मेरा दिल बहुत खुश हुआ। टैक्सी भीड़ में

अटकी हुई थी, इसलिए ड्राइवर बात करने लगा "पिछले दो साल से यह सड़क बन रही है। इसका ठेका मेरे चचेरे भाई के जीजे के पास है। वह बहुत बड़ा ठेकेदार है! एक तरफ जनता की सड़क बनाता है दूसरी तरफ फौज के लिए बन्दूकों के बेंट बनाता है। इस सड़क का काम रुका हुआ है······पर वह बेचारा भी क्या करे, जब सड़क बनाने का माल ही नहीं मिलता, तो सड़क बनाना जरूरी नहीं रह जाता, चूंकि हिन्दुस्तान में लड़ने के लिए फौज मिल जाती है, इसलिए बन्दूकों के बेंट बनाना ज्यादा जरूरी हो जाता है। बड़ा ईमानदार ठेकेदार है इसलिए उसने सड़क की मरम्मत का काम रोका हुआ है।"

यह सुनकर मेरा दिल और भी खुश हुआ। जो जनता अपनी असली जरूरतों को समझ लेती है, वही लोकतन्त्र का निर्माण करती है। जब हिन्दुस्तान का एक टैक्सी ड्राइवर बगैर किसी शिकवे-शिकायत के इतनी समझदारी की बात कर सकता है, तो औरों का रवैया क्या होगा, यह आसानी से समझ में आ गया। यही लोकतन्त्र का सच्चा रवैया है, जो मैंने अपने अजनबी हिन्दुस्तान में पहली बार देखा।

जिस परिवार में मैं ठहरा, वह लोकसेवकों का था। घर के सबसे बड़े व्यक्ति दीवानचन्दजी एक फैक्टरी के मालिक थे। उनके छोटे भाई भगवानचन्दजी कार्पोरेशन के सदस्य थे और दीवानचन्दजी का इकलौता बेटा घर के ऐशो-आराम छोड़कर कमीशन प्राप्त कर भारतीय फौज में सेकिण्ड लैफ्टिनेंट हो गया था। घराने के तीनों मर्द जनता और देश की सेवा में लगे हुए थे।

मुझे उस वक्त बड़ी खुशी हुई जब—दीवानचन्दजी ने अपने लड़के आनन्द के बारे में बताया "निशाना तो उसका अचूक है। एक बार फैक्टरी में मजदूरों ने हड़ताल कर दी और जब वे जुलूस बनाकर फैक्टरी

के फाटक पर प्रदर्शन के लिए नारे लगाते हुए आ रहे थे, तो पहले से तैनात पुलिस पीछे हटने लगी। आनन्द ने आव देखा न ताव, पिस्तौल निकालकर झण्डा उठाए हुए मज़दूर पर ऐसा फायर किया कि एक गोली में ही उसका झण्डा नीचे गिर गया और बांह चिथड़े-चिथड़े हो गई...... उसके बाद पुलिस ने फायर किया......"

यह सुनकर हिन्दुस्तान की पुलिस के बारे में मेरे ख्यालात बहुत ऊंचे हो गए। जनता की ऐसी पुलिस लोकतंत्र में ही हो सकती है......जब जनता के एक नौजवान ने पहला फायर किया, तब पुलिस ने गोली चलाई। और देशों की पुलिस तो उलटे जनता पर ही गोली चलाती है।

मैंने खुश होते हुए दीवानचन्दजी से पूछा, "आपके यहां लोकतंत्र बहुत सफल हो रहा है......मगर यह अन्न वगैरह की दिक्कत की बातें सुनाई पड़ती हैं, इस मसले को आप लोग कैसे हल कर रहे हैं?"

"रेफ्रीजरेटर और नेलपॉलिश बनाकर!" दीवानचन्दजी ने कहा, "अन्न की बड़ी विकट समस्या है हमारे देश में! हमारे देश का हर आदमी एक सैनिक की तरह अपनी-अपनी जगह काम कर रहा है! हमने अपने गांव की सब ज़मीनें बेचकर फैक्ट्री लगाई! अन्न की समस्या सुलझाने के दो ही तरीके हैं। एक तो यह कि पेट भरने के लिए ज़्यादा अन्न पैदा किया जाए। वह हमारे यहां अपने आप हो जाता है, क्योंकि भारत कृषि-प्रधान देश है और पच्चानबे प्रतिशत भारत गांवों में रहता है। इसलिए उस दिशा में कुछ ज़्यादा नहीं किया जा सकता। दूसरा तरीका यही है कि लोगों की खाने की आदतों को बदला जाए। आपने यह देखा होगा कि फैशनेबुल औरतें बहुत कम खाती हैं......अगर हम औरतों को फैशनेबुल बना दें, तो दूसरी तरह से यह काम अपने-आप शुरू हो जाता है। औरत में एक खसलत यह भी होती है कि जो काम वह खुद नहीं करती, वह दूसरों को भी नहीं करने देती......इस तरह

आदमी भी कम खाएगा। नेलपॉलिश दिमागी रूप से औरत को फैशनेबुल बनाती है, इसलिए अन्न-समस्या को सुलझाने में काम आती है।

"और रेफ्रीजरेटर तो बड़ी काम की चीज है। हिन्दुस्तान गर्म मुल्क है, इसलिए यहा अन्न की वस्तुए बड़ी जल्दी सड़ती हैं। और सड़नेवाले अन्न को बचाया जा सके, तो आधी समस्या अपने आप हल हो जाती है......हम तो साहब इस तरह से सेवा में लगे हुए हैं..."

दीवानचन्दजी की बातें सुनकर मेरी आखें खुल गईं और यह मानने के लिए मजबूर होना पड़ा कि अपने अजनबी भाइयो का दिमाग गजब का है। और लोकतन्त्र बिना दिमाग के नही चल सकता।

उन दिनो दीवानचन्दजी के चिरजीव आनदजी भी घर पर ही थे। एक हफ्ते की छुट्टी पर आए हुए थे। चिरजीव जरा खुली तबीयत के आदमी थे। घर पर उनकी शादी की बातचीत चल रही थी कि वे मुझसे बोले, "जब से चीन ने हम पर हमला किया है, हमारा लोकतन्त्र खतरे मे पड़ गया है साहब! जिन्दगी का रूप ही बदल गया, नही तो आफीसर्स मैस की जिन्दगी का कोई जवाब नही था। पीना-खाना और नाचना-गाना। उन दिनो हम कुवारो की कीमत भी खासी थी। हर लड़की शादी करने के लिए उतराई घूमती थी, क्योकि सबको पता था कि लोकतन्त्र की फौजें लड़ती नहीं। भारतीय लोकतन्त्र की फौज तो लड़ाई के लिए बनाई ही नही गई थी! इसलिए हर लड़की फौजी अफसर के साथ शादी करने के लिए उतावली दिखाई पड़ती थी। जिस दिन से चीनियो ने हमला किया, हम फौजी अफसरो का भाव, लड़कियो के बाजार मे, एकदम गिर गया......लोकतन्त्र की रक्षा हम इसलिए भी करना चाहते हैं कि यह भाव बना रहे..."

आनन्द की बात मुझे बहुत जची और यह भी मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान मे लोकतंत्र के लिए लोग क्यों लड़ रहे हैं! यह पक्का

विश्वास भी हुआ कि लोकतंत्र यहां सफल होकर ही रहेगा—क्योंकि उसके पीछे ऐसी ऊंची भावनाएं हैं।

मैं यही सोच रहा था कि खाने के लिए बुलावा आ गया और खाने की मेज़ पर दीवानचंदजी के भाई भगवानचंद जी से मुलाकात हुई। वे मुझे बड़े तपस्वी आदमी लगे, वे कार्पोरेशन के सदस्य थे और लोक-सेवा का तेज उनके चेहरे पर छाया हुआ था। उनके व्यक्तित्व में अजीब-सा खिचाव था।

हम लोग खाना खाने बैठे ही थे कि भगवानचंदजी के लिए फोन आ गया, फोन पर किसीने उन्हें बधाई दी। यह उनकी बातों से पता चला। उनके बड़े भाई दीवानचंदजी अपनी उत्सुकता नहीं रोक पाए तो पूछ ही बैठे, "किसका फोन था ?"

"ठेकेदार साहब का !" भगवानचन्द ने कहा, "बधाई दे रहे थे ······कि सब मामला ठीकठाक निपट गया···"

मेरी उत्सुकता भी बढ़ गई। सोचा किसी खुशी की बात पर ही बधाई दे रहे होंगे, सो पूछ ही बैठा, किस बात पर बधाई मिल रही थी आपको ! हमें भी खुशी होगी जानकर···"

भगवानचंदजी ने बताया, "लोकतंत्र है न हमारे यहां······सो साहब रोज़ कोई न कोई चक्कर लगा रहता है। लोकसेवा में रोज़ एक न एक झंझट खड़ा ही रहता है। जनता की सेवा न करो तो बदनामी होती है, सेवा करो तो बदनामी होती है। कार्पोरेशन की एक समिति की अध्यक्षता मैं कर रहा था······उसके ज़िम्मे कुछ मकान बनवाने का काम था। मैंने ईमानदारी से सारा काम अंजाम दिया।······पर कार्पोरेशन के कुछ और सदस्यों को मेरी यह ईमानदारी खल गई ! उन्होंने मुझपर आरोप लगाया कि कार्पोरेशन की ओर से बननेवाली रिहायशी इमारतों को बनवाने के बीच ही मैंने उसीके पैसे से अपने दो मकान भी बनवा

।र कोई काम नहीं था। यह देखकर मुझे ताज्जुब भी हुआ कि तना मुसीबतों को झेलते हुए भी वह आदमी हिन्दुस्तानी नेतावादी लोकतंत्र के खिलाफ कुछ नहीं बोल रहा था। उसे सिर्फ एकाध नेताओं से शिकायत थी और अपनी किस्मत से। उसके पास रहते हुए मुझे यह भी पता चला कि लोकतंत्र और किस्मत का चोली-दामन का रिश्ता है ......जब तक हिन्दुस्तान में लोग भाग्य पर विश्वास करते हैं, लोकतंत्र को कोई हिला नहीं सकता।

सरकार पर वह नाराज़ इसलिए था कि उसने शराबबंदी कर रखी थी, और मुसीबतों को हल करने के लिए शराब की उसे बहुत ज़रूरत महसूस होती थी। यही सीधा रास्ता उसके सामने था।

शाम को मेरा वह परिचित क्लर्क वासुदेवन साथ निकला और शराब की तलाश में इधर-उधर घूमने लगा। कई बस्तियों की ऐसी दुकानों के चक्कर उसने लगाए जहां उसे शराब मिलने की उम्मीद थी! जब नहीं मिली तो मैंने कहा, "अब आप यह नेक खयाल छोड़ दीजिए।"

"तब तो सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाएगा......शाम का खून हो जाएगा।' वासुदेवन ने कहा, "किसी टैक्सीवाले से पता करता हूं......इन लोगों को पता रहता है।"

"क्यों अपनी बेइज़्ज़ती कराने पर उतरे हो" मैं कह ही रहा था कि वासुदेवन ने एक टैक्सीवाले से सवाल कर ही दिया। वह टैक्सीवाला पता न होने का इशारा करके चलता बना।

मैंने उसे समझाया, "अब यह इरादा छोड़ ही दीजिए। कई पुलिस के सिपाही आस-पास घूम रहे हैं, ज़रा-से में तमाशा हो जाएगा।"

"पुलिस।" वासुदेवन खुशी से चीखा, "यार तुमने अच्छी बात याद दिलाई। पुसिसवाले को ज़रूर पता होगा!"

"दिमाग खराब हो गया है तुम्हारा।" मैंने उसे फटकारा, "हथ-

कड़ियां पड़वाओगे क्या ?" पर वासुदेवन के चेहरे पर खुशी छलक रही थी।

एक तरफ टैक्सियों के अड्डे के पास अकेला पुलिसमैन खड़ा बीड़ी पी रहा था और बड़ी तेज निगाहों से लोगों को देख रहा था। वासुदेवन लपककर उसके पास पहुंचा और उसने दो रुपये पुलिसवाले की हथेली में रखते हुए सीधे-सीधे पूछा, "हवलदार साहब ! यहां कहीं मसाला मिल जाएगा ?"

"देसी या विलायती !" पुलिसवाले ने दरयाफ्त किया।

"कोई भी" वासुदेवन कह रहा था, और मेरी जान सूख रही थी।

"मिल जाएगा !"

"कहां ?"

"लाइए मैं ला देता हूं……पांच और ऊपर से पड़ जाएंगे!" पुलिसवाले ने कहा और रुपये लेकर बगलवाली गली में घुस गया।

मैं अब तक अपनी बदहवासी से उबर नहीं पाया था। मुझे परेशान देखकर वासुदेवन ने कहा, "यह अपने अजनबी देश की पुलिस है माईजान। जनता की सेवा करती है……लोकतंत्र की रक्षा करती है……"

इतने में वह पुलिसवाला लौट आया था। एक झोले में बोतल पड़ी थी, आते ही उसने कहा, "एक रुपया झोले का और हुआ।"

वासुदेवन ने एक रुपया और उसकी नजर किया और पुलिसवाले ने हल्के-से वासुदेवन को सलाम किया और एक ओर खिसककर फिर बीड़ी पीने लगा।

इस घटना के बाद तो मेरी खुशी की सीमा ही नहीं रही। मैंने वासुदेवन से पूछा, "यहां पुलिस यह भी करती है ?"

"पुलिस नहीं, गरीबी करती है। और गरीबी लोकतंत्र की एक बड़ी शर्त है। सच्चा लोकतंत्र वही है, जहां जनता और सरकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता। सरकार सोचने का काम करती है और जनता

जिन्दा मुर्दे

उन दिनों पाकिस्तान में बड़ी सर-गर्मियां थी। हर तरफ एक अजीब-सा तनाव नज़र आता था। सरकारी हलकों में बड़ी भागदौड़ हो रही थी। पता यह चला था कि पाकिस्तान के सदर अय्यूब खां एकाएक मचल पड़े थे और वे टहलते हुए दिल्ली की तरफ आना चाहते थे।

उनकी चहलकदमी के लिए तैयारियां हो रही थी। सबसे पहले अखबारनवीसों को बुलाया गया और उन्हें बताया गया कि सदरे-पाकिस्तान चूंकि टहलते हुए दिल्ली की तरफ जाना चाहते हैं, इसलिए अखबारी तोपों के दहाने खोल दिए जाएं। गोला-बारूद जमा कर ली जाए और जैसे ही अय्यूब साहब भारत की जमीन पर पहली सितम्बर को खुल्लमखुल्ला कदम रखें, वैसे ही बौछार जारी कर दी जाए। जो काम कश्मीर में पांच अगस्त से किया जा रहा है, उसके बारे में दुनिया को कानोंकान खबर न होने दी जाए।

अखबारनवीसों को रिपोर्टों के कुछ नमूने दे दिए गए जिनके सहारे उन्हें पहली सितम्बर के बाद छपने वाली खबरों को ढालना था। कुछ अमरीकी और अंग्रेज अखबारनवीसों ने भी इस मीटिंग में हिस्सा लिया

अपना काम करती है······इस सोचने और काम करने में कोई तालमेल नहीं होता······जब तक यह हालात रहते हैं, लोकतंत्र बना रहता है।"

यह सुनकर मुझे और भी सन्तोष हुआ कि हिन्दुस्तान में दो ही तरह के तबके हैं······अमीरों और गरीबों के। सोचनेवालों और काम करने-वालों के······और यह अच्छी बात है कि जो सोच रहा है वह काम नहीं कर रहा है, और जो काम कर रहा है, वह सोच नहीं रहा है।

चलते हुए मैंने पीछे मुड़कर देखा······पुलिसवाला सिर्फ अपने काम में मशगूल था। वह कुछ सोच नहीं रहा था सिर्फ बीड़ी पीते हुए तेज़ निगाहों से आते-जातों को देख रहा था।

ज़िन्दा मुर्दे

उन दिनों पाकिस्तान में बड़ी सरगर्मियां थीं। हर तरफ एक अजीब-सा तनाव नज़र आता था। सरकारी हलकों में बड़ी भागदौड़ हो रही थी। पता यह चला था कि पाकिस्तान के सदर अय्यूब खां एकाएक मचल पड़े थे और वे टहलते हुए दिल्ली की तरफ आना चाहते थे।

उनकी चहलकदमी के लिए तैयारियां हो रही थीं। सबसे पहले अखबारनवीसों को बुलाया गया और उन्हें बताया गया कि सदरे-पाकिस्तान चूंकि टहलते हुए दिल्ली की तरफ जाना चाहते हैं, इसलिए अखबारी तोपों के दहाने खोल दिए जाएं। गोला-बारूद जमा कर ली जाए और जैसे ही अय्यूब साहब भारत की ज़मीन पर पहली सितम्बर को सुल्तमगुल्ला कदम रखें, वैसे ही बौछार जारी कर दी जाए। जो काम कश्मीर में पांच अगस्त से किया जा रहा है, उसके बारे में दुनिया को कानोंकान खबर न होने दी जाए।

अखबारनवीसों को रिपोर्टों के कुछ नमूने दे दिए गए, जिनके सहारे उन्हें पहली सितम्बर के बाद छपने वाली खबरों को ढालना था। कुछ अमरीकी और अंग्रेज अखबारनवीसों ने भी इस मीटिंग में हिस्सा लिया

और पाकिस्तानी सरकार को यह यकीन दिलाया कि उनके अखबारों की तोपें भी वही आग उगलेंगी, जो सदरे-पाकिस्तान चाहते हैं।

अखबारनवीसों के बाद शायरों को याद फरमाया गया। उनसे कहा कि सदरे-पाकिस्तान टहलते हुए दिल्ली की तरफ जाना चाहते हैं, इसलिए आप लोग नज़्मों और नग़मों से लैस रहिए। बेहतर यह होगा कि आप शायर लोग इस आने वाले मसले पर पहले से चीज़ें तैयार कर लें। पाकिस्तानी फौजी अफसरों का एक बोर्ड पहले से तैयार कर दिया गया है, जो इसलाह के लिए हर वक्त मौजूद रहेगा। बेहतर होगा कि नज़्में और नग़मे पहले से जंचवा लिए जाएं ताकि ऐन वक्त पर किसी तरह की दिक्कत न होने पाए। यह एलान सुनकर पाकिस्तान के शायरों और अदीबों के चेहरों पर रौनक आ गई। एक ने झिझकते हुए पूछ ही लिया—"इन नज़्मों और नगमों के लिए हमें कुछ ···"

सरकारी अफसर ने फौरन बात ताड़ ली और बोला, "जी हां, मिलेगा···मिलेगा ! जब सदरे-पाकिस्तान चहलकदमी करते हुए दिल्ली पहुंच जाएंगे, तब आप लोगों की एक टुकड़ी को वहां भेजा जाएगा और यह इजाज़त दी जाएगी कि आप दिल्ली का उर्दू बाज़ार उखाड़कर रावलपिंडी ले आएं, क्योंकि अपने यहां उर्दू है, पर बाज़ार नहीं है। भारत का मुसलमान और उर्दू पढ़नेवाला तबका चूंकि अपने को हिन्दुस्तानी कौम का अटूट हिस्सा मानने लगा है, इसलिए यह ज़रूरी हो गया है कि उसे सबक सिखाया जाए ! एक हिदायत और है कि जब आपकी टुकड़ी उर्दू बाज़ार उखाड़ने के लिए जाए, तो गलती से भी कोई हिन्दुस्तानी मुसलमान पकड़कर साथ न लाया जाए, क्योंकि अब तो वह कतई यकीन के काबिल नहीं रह गया है···जो कुछ आप इस दौरान लिखेंगे, उसकी कीमत तय की जाएगी और उसका भुगतान अमरीका और बर्तानिया की सरकारें करेंगी।"

शायरों के बाद बैण्डवालों को बुलवाया गया और हुक्म दिया गया कि शायरों के जो नगमे फौजी काउंसिल मजूर करेगी, उनकी धुनें बनाने का काम उन्हें करना होगा। यह खास खयाल रखा जाएगा कि बाजों मे ढोल को ज्यादा अहमियत दी जाए और सुरीले बाजों को इस्तेमाल न किया जाए। सरकारी अफसर ने यह भी कहा कि बैंडवाले ज्यादा से ज्यादा ढोल मढवाकर तैयार रखें, क्योंकि सदरे पाकिस्तान की चहल-कदमी शुरू होते ही ढोल नेशनल-बाजा मजूर कर लिया जाएगा और उसका रुतबा बढ़ जाएगा। ढोल मढने के लिए खालों की जो कमी पडेगी उसको हमारा दोस्त चीन पूरा करेगा क्योंकि खाल खीचने मे उस-सा माहिर दुनिया मे दूसरा नही है। तिब्बतियों की खाल खींचकर उसने यह साबित कर दिया है। चीन ने हमें यह यकीन भी दिलाया है कि हमारे ढोलों के लिए वह लगातार खालें सप्लाई करेगा, क्योंकि वह सिक्यांग मे बहुत जल्द अपनी फौजों को खाल खींचने का काम सुपुर्द कर रहा है।

एक बैंडवाले ने बढकर पूछा, "क्यों जनाब, हमारे चीनी दोस्त हिन्दुस्तानियों की खाल नही खींच सकते ?"

"यह उस वक्त होगा जब सदरे-पाकिस्तान टहलते हुए दिल्ली पहुच चुके होंगे। फिलहाल चीन जरा घबरा रहा है, पर हमारे दिल्ली पहुचते ही वह खुलकर खेलेगा···"

बैंडवालों के बाद फोटोग्राफरों को बुलाया गया। सरकारी अफसर ने एलान किया—"सारी तैयारियां पूरी हो चुकी हैं और अब आप लोगों का यह फर्ज है कि आप अखबारनवीसों का हाथ बटाएं और पाकिस्तानी फौज के अदना सिपाही से लेकर आला कमान तक के अफसरों की तस-वीरें तैयार रखें। आप लोग कुछ ऐसी तसवीरें भी तैयार करें जिनमें अपना कौमी झण्डा हिन्दुस्तान की खास-खास इमारतों पर फहरा रहा

हो। ये तसवीरें पहले से तैयार रहनी चाहिए क्योंकि बर्तानिया और अमरीका के अखबार ऐसी तसवीरों के लिए बड़ी मांग पेश करेंगे...... [illegible] कि सदर साहब चहलकदमी शुरू करें, ये तसवीरें तैयार [illegible]ए।"

[illegible] पेशों के लोगों को भी बुलाकर जरूरी हिदायतें दी [illegible] यह सब तैयारी पूरी हो गई तो एक दिन सुबह-सुबह रावल[illegible] बजने लगे। सदर अय्यूब खां चहलकदमी के लिए तैयार

[illegible]खबारनवीस टूटे पड़ रहे थे। शायर लोग मंजूर की हुई नज्में [illegible] नगमे पढ़ रहे थे। बैण्डवाले ढोल पीटे जा रहे थे और फोटोग्राफर [illegible] भूलकर तसवीरें उतारने में लगे हुए थे। तभी सदरे-पाकिस्तान की कड़कती हुई आवाज सुनाई पड़ी..."हमारी फौजें कहां हैं?"

"जी...वो मुंह धोने के लिए गई हुई हैं!" एक वजीर ने बताया "अभी हाजिर होती हैं।"

"और जनाब जुल्फिकार अली भुट्टो नजर नहीं आ रहे हैं?" सदर ने इधर-उधर देखकर पूछा।

"जी, वह अपने दांत बदलवाने गए हुए हैं...कल दोपहर ही कुछ [illegible] आए हैं। वो उन की बत्तीसी बदल रहे हैं!" वजीर ने [illegible]

[illegible] "और हमारे हवाबाज?"

[illegible] है कि कबूतरों का एक झुण्ड उड़ाकर [illegible] है ताकि पैक्टिस हो जाए!"

[illegible] मुझे खबर दी जाए!" कह

[illegible]

[illegible] की, "जब से आप

का हुक्म मिला है, तब से कोई फौजी हमारे सामने ही नही पड रहा है······मुंह धोकर लौटते ही कूच का सिलसिला शुरू हो जाएगा······ हम उनकी तसवीरें कब उतारेंगे ?"

फोटोग्राफरो की यह बात सुनते ही अफसर बिगड़ गया—"आप लोग निहायत बेवकूफ हैं······अब तक क्या सो रहे थे ? चाहे मुरदो को वर्दी पहनाइए, पर तसवीरें तैयार रखिए !"

उसी दिन बर्की कस्बे के फोटोग्राफर असगर मिया ने एलान के मुताबिक चार तसवीरें खीची। बन्ने कलईवाले को उन्होंने वर्दी पहनाई और तीन मिनट मे तसवीर तैयार करके लटका दी। गनी कबाबवाले को उन्होंने पकड़ा और खट से तसवीर खीच ली। असगर मिया खुद रिटायर फौजी थे, इसलिए वर्दी मिलने मे दिक्कत नही हुई। उनके पास एक पुरानी वर्दी पडी थी। पूरे दिन भर असगर मिया लोगो को बताते रहे, "किबला, हमे फौज से ज्यादा तसवीरो की जरूरत है······ये तसवीरें दुनिया भर के अखबारो में छापा होगी······"

रमजानी हुज्जत करने लगा, "मिया, कराची और रावलपिंडी मे बड़े-बड़े और मशहूर तसवीरवाले मौजूद हैं, आपकी तसवीरो को कौन पूछेगा ?"

"इस वक्त मुल्क के हर शख्स का फर्ज है कि वो वही करे, जो सदर साहब ने फरमाया है······ये वर्दी पहन लो, फिर जो तसवीर आएगी वह तो तुम जैसे मुरदो को भी जिन्दा साबित कर देगी······समझे···"

"फर्ज का सवाल है तो लीजिए, पहनाइए वर्दी और उतार लीजिए तसवीर !" रमजानी बोला।

और असगर मिया अपने कनस्तरनुमा कमरे मे मुह डालकर फोकस करने लगे थे।

जैसे ही सदरे-पाकिस्तान की चहलकदमी की खबर कस्बे मे पहुंची······

मियां ज़िन्दाबाद के नारे लगाने लगे। पूरे कस्बे में सनसनी फैल
वारों की कागज़ी तोपें दगने लगीं। कुछ धड़ाके बर्तानिया
अमरीका के अखबारों में हुए। रेडियो पाकिस्तान से शायरों के तैयार
शुदा नगमे गूंजने लगे और पूरे मुल्क में ढोल बजने लगे।

दो दिन इन ढोलों और अखबारी तोपों के धूम-धड़ाकों में कुछ भी सुनाई नहीं दिया। धीरे से जब यह खबर आई कि भारतीय फौजों ने चार जगह जवाबी हमला बोल दिया है तो अखबारी तोपों के दहानों में कुछ और बारूद भरी गई। ढोलों की आवाज़ तेज़ करने का हुक्म जारी हुआ।

हुक्म के मुताबिक असगर मियां अपने कस्बे में मीटिंग करने लगे। रिटायर फौजी होने की वजह से असगर मियां को रावलपिंडी के दरबार का एक खास कारकुन माना जाता था। कस्बे में उनकी बड़ी इज़्ज़त थी। यह इज़्ज़त तब और बढ़ जाती थी, जब मुल्क में जंगी खबरें फैलने लगती थीं। अमरीकी हथियारों की इमदाद की खबर भी असगर मियां ही कस्बे में लाए थे। एक तरह से वे कस्बे के फील्ड मार्शल माने जाते थे।

दिन-दिन-भर असगर मियां सदरे-पाकिस्तान के फरमानों का मतलब लोगों को समझाते रहते, लेकिन जब ये खबरें जोर पकड़ने लगीं कि भारतीय फौजें बराबर बढ़ती आ रही हैं, तो लोगों ने भागना शुरू कर दिया। तीन दिन बाद ही बर्की कस्बा भारतीय फौजों ने सर कर लिया और वे इच्छोगिल नहर के किनारे पहुंच गईं।

इच्छोगिल नहर के किनारे जमकर लड़ाई हुई। उधर अखबार-नवीसों ने कुछ और बारूद अपनी तोपों में भरी। शायरों ने कुछ और तराने गाए। बैण्डवालों ने कुछ और ढोल बजाए।

ढोलों की खालें फटने लगीं तो चीनियों ने खालों का इंतज़ाम करने

के लिए भारत-सरकार को फौरन एक खत लिखा कि जो आठ सौ चीनी भेड़ें भारत के सिपाहियों ने पकड़ ली है, उन्हें फौरन वापस किया जाए। खत की एक कापी रावलपिंडी पहुंची तो ढोल वालों को करार आया।

भारतीय फौजों के हमले से जो पाकिस्तानी फौज भागी थी, वह वहीं से होती हुई लौटी थी। असगर मियां ने बहुत हाथजोड़ा की, पर भागती फौज ने ध्यान न दिया। आखिर वे बचे हुए आठ लोगों के साथ दुकान के पासवाली सराय में जा छिपे थे और लगातार अपने आधे साथियों के सामने तकरीरें किए जा रहे थे।

इच्छोगिल नहर के किनारे पाकिस्तान ने सबसे पहले ढोलवालों को आगे भेजा। उनके पीछे पैटन टैंक साहब आए और फिर अपनी नामी बख्तरबन्द फौज की एक डिवीजन तथा पैदल फौज का एक ब्रिगेड भी उसने झोंक दिया।

जिस वक्त बख्तरबंद फौज लड़ाई के मैदान में झोंकी गई उस वक्त शायर लोग रेडियो पाकिस्तान से फतह के नगमे सुना रहे थे और सराय की कोठरी में सांस रोककर बैठे हुए असगर मियां दुआएं मांग रहे थे। सांसों की कमी की वजह से ढोलों की आवाज कुछ मद्धिम पड़ गई थी।

इच्छोगिल नहर के किनारे घमासान लड़ाई हो रही थी। गोलों और बारूद से आसमान लाल पड़ गया था। चारों तरफ चीखें, मार-काट, धमाके और गोलों-बन्दूकों की गूंजती हुई आवाजें थीं। धुए और धूल के बादल थे। कुचली हुई फसलें और कई मील के घेरे में पड़ी लाशें थीं। कराहते हुए घायल और दम तोड़ते सिपाही थे।

वहीं कस्बे के कच्चे घरों की दीवारें उस गोलाबारी की आग में बुझे हुए अंगारों की तरह चमक रही थीं। खपरैलों से धुएं के बादल उठ रहे थे।

सुबह हुई तो चारों तरफ सन्नाटा था। नहर का किनारा लाशों से पटा हुआ था। टैंकों, मशीनगनों और गोलों के टुकड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। शायरों के नगमे थम गए थे और फटे हुए ढोलों को फिर से मढ़ा जा रहा था। अखबारों की तोपों में जरूर कुछ जोश आ गया था और वे दनादन गोले उगल रही थीं।

बर्तानिया और अमरीका के अखबार-नवीसों को फौरन बुलाया गया और उनसे मदद मांगी गई। सभी दोस्तों ने साथ दिया।

इधर इच्छोगिल नहर और बर्की कस्बे में सन्नाटा छाया हुआ था। बेकार हुए टैंकों की बगल में एक जीप के टुकड़े बिखरे हुए थे, उसमें चार फौजियों की लाशें पड़ी थीं।

कुछ देर बाद पाकिस्तानी सिपाही ट्रकें और जीपें लेकर आए और खास-खास मुरदों को उठा ले गए लेकिन इस हड़बड़ी में ब्रिगेडियर शामी की लाश पड़ी रह गई।

भारतीय जवानों ने जब फौजी निशानों से पाकिस्तानी ब्रिगेडियर को पहचाना, तो वे अदब से उनकी लाश उठाकर अपनी तरफ ले आए।

पाकिस्तानी ब्रिगेडियर की लाश जब भारतीय फील्ड कमाण्डर के सामने लाई गई तो सभी ने एक मिनट खामोश खड़े होकर उसे सम्मान प्रदान किया।

"उन्हें फौजी सम्मान के साथ दफनाया जाए ?" फील्ड कमाण्डर ने पास खड़े कप्तान से कहा और वह कई क्षणों तक पाकिस्तानी ब्रिगेडियर की लाश को देखता रहा। फिर उसने अपनी टोपी उतारकर एक बार फिर उसे सम्मान प्रदान किया और बोला, "मौलवी साहब को [illegible] दफनाने का इंतज़ाम कर दिया जाए !"

इनका फोटो ले-ले तो !"

"

"इनकी—फैमिली को भिजवा देंगे।"

"जरूर ······जरूर······"

कप्तान ने फोटोग्राफर की तलाश की। उसने पेट्रोल पार्टी के जवानों को बुलाकर पूछताछ की तो पता चला कि वर्की कस्बे में एक फोटोग्राफर है।

कस्बा लगभग वीरान पड़ा था। कच्चे घरों के ढेर इधर-उधर बिखरे हुए थे। गलियों में भगदड़ के वक्त कुचले हुए लोगों की लावारिस लाशें पड़ी थीं। मलबे के ढेरों के नीचे भी लाशें दबी थीं ······कुछेक कुत्ते सूंघते हुए फिर रहे थे।

भारतीय सिपाहियों को देखते ही कस्बे के बचे-खुचे लोग सराय के कमरों में दुबक गए थे। सराय के बाहर ही रिटायर्ड हवलदार मुहम्मद असगर खां सरगोधावाले की फ़ोटोग्राफी की दुकान का बोर्ड लटक रहा था।

पेट्रोल टुकड़ी के नायक ने आवाज़ दी—"सारे लोग कोठरियों से निकल आएं ······अगर कोई हथियार पास हो तो उसे पहले बाहर फेंक दें! किसीको जान का कोई नुकसान नहीं होगा।"

एक मिनट बाद ही एक निहायत बूढ़ा आदमी हाथ उठाये हुए कोठरी से बाहर आया······उसके पीछे सात आदमी भी उसी तरह निकल आए।

तीन जवानों ने फौरन कोठरियों को देख डाला। सारे ढोल फटे हुए थे।

"तुम लोगों में से कोई तसवीर खींचनेवाला है?" नायक ने पूछा।

असगर मियां आख के इशारे से अपने साथियों को मना करें ······ने बता दिया था—"लफटैन साब······यह है फोटो गिराफर

…इन्हींकी अकेली दुकान इस कस्बे में है……"

असगर मियां ने घबराते हुए कहा –"अजी साहब, वो तो बस कहने भर को है……तसवीर बनाना अपने को नहीं आता……"

"अरे मियां……तुम तो तमाम हुक्कामों की तसवीरें उतार चुके हो। रावलपिंडी, स्यालकोट में तुम्हारी उतारी तसवीरें बिकती हैं और अब……" साथियों में से एक बातूनी बोल पड़ा, "लफटैन साब, असगर मियां फौज में रह चुके हैं……इस बुढ़ापे में अब तसवीरें उतारने का काम करते हैं……"

असगर मियां के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। आखिर जब समझा-बुझाकर, डरा-धमकाकर नायक ने उन्हें तैयार किया तो वे बोले, "अब देख लेता हूं……कैमरा-वैमरा सही सलामत है या नहीं……"

और कुछ ही देर में असगर मियां अपने किस्से सुनाते हुए जीप में बैठकर चल पड़े। उन्होंने अपने बाक्स कैमरे का तिकोना स्टैंड, लोशन की शीशियां, धोने की प्लेटें वगैरह सब ले लीं और बड़ी मौज में अपने किस्से सुनाते जा रहे थे।

"पाकिस्तानी जवान भी खासा लड़ाका है!" एक जवान ने कहा तो असगर मियां खुश हुए, "बड़ी दिलेर कौम है हमारी ……" फिर वे खुद ही कुछ अचकचा गए और धीरे से बुदबुदाए, "हिन्दुस्तानी भी बहुत दिलेर हैं……अपनी तो आधी जिन्दगी ही फौज में गुजरी…… फील्ड मार्शल सदर अय्यूब खां साहब जिस वक्त आला कमान में थे, उस वक्त मैं रेगुलर फौज में था। हमारी कौम की रगों में फौजी जोश भर दिया सदरे अय्यूब ने और हमारी फौजों को अमरीकी हथियारों से लैस कर दिया। जंग तो हमारे लिए……" वे अपनी रो में कहते जा रहे।

जीप कमांड पोस्ट पर जाकर रुक गई।

ब्रिगेडियर की लाश को मगगर मिया के कैमरे की गहलियत के लिए एक मेज पर टिका दिया गया था। लाश कुछ अकड़ गई थी, इसलिए उसे ठीक से रखा नहीं जा सका था। फिर भी उनका चेहरा और कंधों का हिस्सा ठीक आ रहा था। कोहनी के नीचे उड़ी हुई बाईं बाह तक तसवीर न उतारी जाए, यह मगगर मिया को बता दिया गया था।

"हम नहीं चाहते कि इनके घरवाले यह टूटी हुई बाह देखें...... उन्हें बहुत तकलीफ होगी!" कप्तान ने कहा। उसने अपने रूमाल से ब्रिगेडियर के नथुने के पास चिपके खून के धब्बों को साफ किया और उनकी नीचे झुकी हुई मूछों को ऊपर कर दिया।

मगगर मिया तहमद से अपना पसीना पोछकर एक किनारे आ गए थे। बनम्बर-सा वह कैमरा लोड हो चुका था, लैंस सैट हो गया था और अब वे मौका-मुआयना कर रहे थे।

आगे बढ़कर उन्होंने ब्रिगेडियर की वर्दी का कालर जरा-सा एक तरफ खींच दिया। बटनों की पट्टी को सीधा किया और हथेली की दूरबीन-सी बनाकर एक बार उस लाश को फिर देखा। रोशनी का जायजा लिया और हाथ झाड़कर तैयार हो गए।

कैमरे का तवा खिसकर उन्होंने बायें हाथ में पकड़ लिया था और उनका अगूठा क्लिक करने के लिए तैयार था। एक क्षण के लिए उन्होंने कैमरे को देखा और बोले—"रेडी......रेडी ......स्माइल प्लीज...... वन......टू......थ्री! शुक्रिया......" और काले कपड़े की सुरग में फिर शुतुरमुर्ग की तरह गरदन छिपाकर व्यस्त हो गए। इधर रावलपिंडी में फिर ढोल बजने लगे और शायर नगमे सुनाने लगे।

• • •